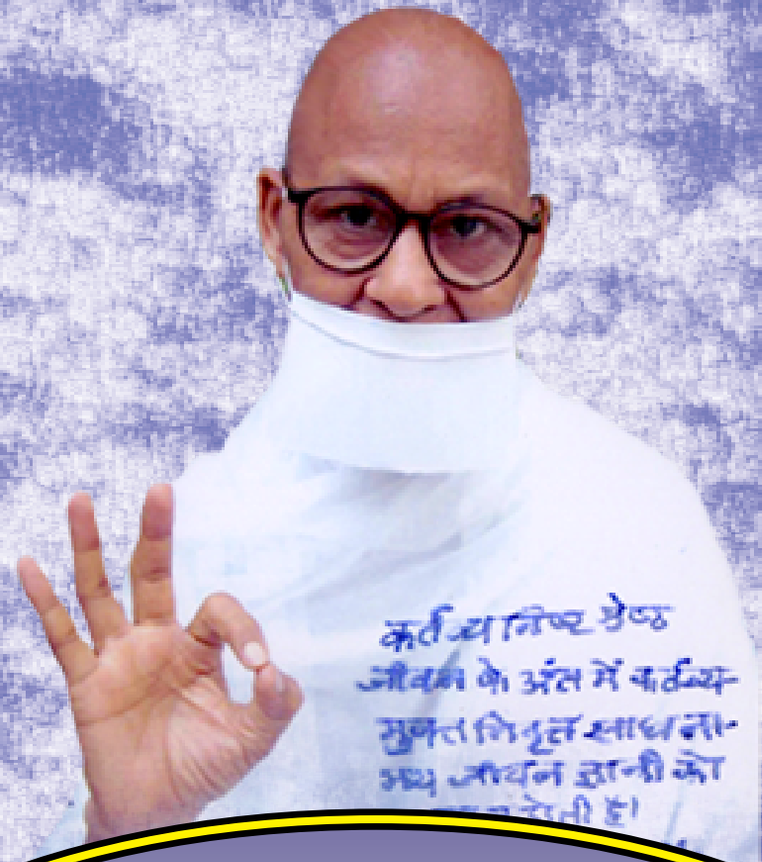

# एकल विहार से मुक्ति
# तथा
# सांवंवत्सरिक विचारणा

जय महावीर

जय गुढ समरथ

जय गुढ चम्पक

# एकल विहार से मुक्ति तथा सांवत्सरिक विचारणा

आगम मनीषी

**श्री त्रिलोकचन्द जी जैन**

राजकोट





**प्रकाशक** : श्री जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति, राजकोट

**[पुष्पांक-१०६]**

**सम्पादक** : आगम मनीषी श्री त्रिलोकचन्दजी जैन

**प्रकाशन समय :** २८-२-२०१५

**प्रथम आवृत्ति :**

**मूल्य** : **5-00**

**प्राप्तिस्थान** : **श्री त्रिलोकचन्द जैन**
ओम सिद्धि मकान
६, वैशालीनगर, रैया रोड,
**राजकोट**-360 007 (गुजरात)
**Mo.** 98982 39961 / 98980 37996

**EMAIL** : **agammanishi@org**
**www.agammanishi.org / jainlibrary.e.org**

# एक चर्या : एकल विहार से मुक्ति

**एगत्तमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोखो, न मुसं ति पास ।**
**एस पमोक्खे अमुसे वरे वि, अकोहणे सच्च रए तवसी ॥**

**अर्थ :-** (समूह में आधाकर्म आदि दोषों की शुद्धि न हो सके तो) अकेले रहना भी स्वीकार कर लेना चाहिए । ऐसा करने से भी मोक्ष हो सकता है, इसे मिथ्या मत समझो । ***-सूत्रकृतांग सूत्र अ॰१०गा॰१२।***

साधु को अकेले विचरने का एकांत निषेध किसी भी शास्त्र में नही है । अपितु अकेले विचरने की प्रेरणा वाले अनेक वर्णन आगमों में है । आगम, भाष्य, टीका आदि के अनेकों प्रमाणों का संकलन यहां किया गया है कृपया ध्यान से पढें ।

**तीन विभागों मे एकल विहार के आगम प्रमाण :-**

१०+१५+७=३२

**एकल विहार-**

जैनागमों में एवं व्याख्या ग्रन्थों मे अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूप से एकल विहार के सम्बन्ध में वर्णन उपलब्ध है ।यह आगम वर्णित एकल विहार मुख्य दो विभागों में विभाजित किया जा सकता है ।

(१) एकल विहार पडिमा (२) एकल विहार चर्या **अथवा** (१) अपरिस्थितिक एकल विहार (विशिष्ट साधना रूप) (२) सपरिस्थितिक एकल विहार (कर्म संयोगजन्य)

**(१) अपरिस्थितिक एकल विहार** :- आभ्यतर या बाह्य कोई भी परिस्थिति के न होते हुए केवल विशेष कर्म निर्जरा के लिये जो आगम वर्णित विशिष्ट तप साधना-समाचारी पालन करने के लिये गुढ या गच्छाधिपति की आज्ञा लेकर सन्मान पूर्वक गच्छ निर्गत होकर विचरण करता है वह अपरिस्थितिक एकल विहार करने वाला होता है ।

**अपरिस्थितिक एकल विहार संबंधी आगम स्थल :-**

**१.** दशा.द. ७. में-ग्यारह भिक्षु पडिमा का वर्णन है ।

**२.** व्यव. उ. ५ तथा बृहत्कल्प. उ. ६. में-जिनकल्प का वर्णन है ।





**३.** ठाणांग.ठा. ३ में-एकल विहार के मनोरथ का वर्णन है ।

**४.** ठाणांग.ठा. ८ में-एकल विहार की गुण सम्पन्नता का वर्णन है।

**५.** सूय. श्रु. १ अ. २. उ.२ में-अकेले विचरण एवं स्थान, शय्या, आसन से समाधि में रहने का कथन है ।

**६.** उतरा. अ. २९ में-संभोग पच्चक्खाण से दूसरी सुख समाधि की प्राप्ति का वर्णन है तथा यहीं सहाय पच्चक्खाण करने से संवर, संयम, समाधि की वृद्धि एवं कलह आदि की अल्पता का वर्णन है।

**७.** आचा. श्रु. १ अ. ८ उ. ४-५-६-७ में- वस्त्र सम्बन्धी विशिष्ट अभिग्रहधारी साधु का वर्णन है तथा सेवा करने, कराने या न करने, न कराने सम्बन्धी चौभंगी युक्त वर्णन है ।

**८.** दशा.द. ४. में- शिष्य को एकल विहार समाचारी की शिक्षा सिखाने से आचार्य को शिष्य के ऋण से उऋण होने का वर्णन है ।

**९.** उववाई सूत्र एवं भगवती सूत्र श. २५ उ. ७ में- तप के वर्णन में व्युत्सर्ग नामक आभ्यन्तर तप में गण त्यागना तप कहा है।

**१०.** अनेक आगमों में वर्णित विशिष्ट अभिग्रह एवं मोय-पडिमाएं आदि अकेले रहकर की जाती है ।

ये अपरिस्थितिक एकल विहार सम्बन्धी आगम स्थल है ।

**(२) सपरिस्थितिक एकल विहार :-** गच्छ सम्बन्धी, शरीर सम्बन्धी अथवा आत्म समाधि सम्बन्धी किसी परिस्थिति से गच्छ का त्याग करना पड़े एवं उस परिस्थिति के अनुकूल कोई साथ न मिले तो अपनी परिस्थिति की जानकारी देते हुए गच्छ त्याग कर जो अकेले विचरण करता है वह सपरिस्थितिक एकल विहारी या एकल विहार चर्या वाला भिक्षु होता है।

**सपरिस्थितिक एकल विहार संबंधी आगम स्थल :-**

**१.** ठाणांग ठा. ३. में- आत्म सुरक्षा के तीन स्थान में अन्तिम अवस्था अपने को (गच्छ से) अलग कर लेने की बताई है ।

**२.** उत्तरा. अ. २७ में-शिष्यों से असमाधि ही असमाधि प्राप्त होने पर गर्गाचार्य के एकल विहार एवं मुक्तिगमन का वर्णन है ।

**३.** उत्तरा अ. ३२ में-समाधि के इच्छुक भिक्षु को योग्य साथी न मिले,

पुण्याशों की अल्पता के कारण जिन शासन में अनेकों होते हुए भी उसे नहीं मिले, (जैसे कि उपरोक्त गर्गाचार्य को एक भी शिष्य न मिला) तो अकेले विचरण की आज्ञा एवं शिक्षा दी गई है ।

**४.** दशवै॰ चू॰ २ में- पूरे इस अध्ययन का नाम ही विविक्तचर्या रखा गया है, इसकी दसवीं गाथा में योग्य साथी न मिलने से अकेले विचरण की आज्ञा दी गई है तथा अनेक प्रकार की सावधानियाँ रखने की शिक्षा अध्ययन समाप्ति तक दी गई है । चूर्णीकार श्री अगस्त्यसिंह सूरि ने भी कहा है कि इन गाथाओं में एकल विहार में किस तरह रहना, इस विषय में सूत्रकार कहते है । ये चूर्णिकार श्री अगस्त्यसिंह सूरि आज से १३०० वर्ष से भी अधिक प्राचीन है ।

इस प्रकार की परिस्थितिक एकल विहारचर्या को नवपूर्वी के लिए कहना अज्ञान दशा है, नवपूर्वी तो बिना किसी परिस्थिति के केवल तप साधना के लिए ही एकल विहार करते हैं ।

**५.** आचा. श्रु. १ अ. ६ उ. २ में-शुद्ध एषणा एवं सर्वेषणा की अभिढचि से एकल विचारचर्या में आराधना करने वाले का वर्णन किया गया है।

**६.** सूय. श्रु. १ अ. १० गा. ११-१२ में- आधाकर्म दोषयुक्त आहार की चाहना करने का तथा आधाकर्म दोष सेवी के साथ रहने का निषेध करते हुए शोक रहित होकर कर्म क्षय करने की प्रेरणा के साथ एकलविहार को स्वीकार करने की प्रेरणा की गई है तथा यह भी आश्वासन दिया गया है कि "एकल विहार" से भी मुक्ति हो सकती है, यह विश्वास रखो, झूठ मत समझो, यदि जो एकाकी भिक्षु क्रोधादि कषाय न करे एवं संयम से सत्यनिष्ठ रहे ।

**७.** व्यव. उ. ६. में- कैसे उपाश्रय में एकेले भिक्षु का किस तरह रहना, यह वर्णन है तथा एकल विहारी को बहुश्रुत होने का निर्देश भी है ।

**८.** व्यव. उ. ८ में-सपरिस्थितिक एकल विहारी साधु की वृद्धावस्था युक्त वर्णन है, उसके छत्र, लाठी, चर्म, चर्मच्छेदनक आदि उपकरणों का कथन है । यहाँ यह विधान किया गया है कि वह भिक्षु अपने ये उक्त अतिरिक्त उपकरणों को साथ लेकर भिक्षा आदि में न जा सके तो किसी गृहस्थ को उनकी सुरक्षा का जुम्मा सम्भलाकर जावे एवं पुनः आने पर उसे सूचित करे । जिनकल्पी की यह स्थिति नहीं होती हैं वे तो एकान्त







उत्सर्ग विधि से एवं अल्प, अल्पतम उपधि से निर्वाह करते और किसी के सहाय की वांछा भी न करते हुए संयम तप की आराधना करते हैं ।

**९.** आचा. श्रु. १ अ. ५ उ. १ में-अपनी प्रकृति की खराबी से अनेक दूषित आचरणों युक्त जीवन जीने वाले एकल विहारी का वर्णन है।

**१०.** बृहत्कल्प उ. ४ में- यथायोग्य आगमोक्त प्रायश्चित्त स्वीकार न करने वाले को गच्छ से अलग कर देने का विधान है । तदनुसार अन्य भी अपराध करने या अनुशासन स्वीकार न करने पर गच्छ से निकाल दिया जा सकता है । वह असहाय होकर एकल विहारचर्चा भी धारण कर सकता है ।

व्यव. उ. २ में- किसी भी परिस्थिति में बीमार साधू को निकालने का स्पष्ट निषेध किया गया है, तदनुसार अतिवृद्ध बाल एवं नवदीक्षित आदि अशक्त, असमर्थ साधु को निकालना अर्थात् अकेले छोड़ देना निषिद्ध समझना चाहिए ।

**११.** ठाणा. ठा. ५ में-गण परित्याग करने के अनेक कारण दिये है, जो गच्छ की अव्यवस्था सम्बन्धी एवं संयम विधियों की यथावत अपालना सम्बन्धी है, उन कारणों से गण त्याग करने की आज्ञा दी गई है । तथा- बृहत्कल्प. उ. ४में- संयम गुणों की वृद्धि हो ऐसे गच्छ में मिलने की आज्ञा है किन्तु संयम गुणों की स्वगच्छ की अपेक्षा हानि होती हो तो वैसे गच्छ में जाने का स्पष्ट निषेध है एवं जाने पर उसका **निशीथ- उ. १६** में चौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है ।

**१२.** व्यव. उ. १ में-आचार्य, उपाध्याय, गणावछेदक एवं सामान्य साधु परिस्थितिक एकल विहारचर्या त्याग कर पुनः गच्छ में आना चाहे एवं पार्श्वस्थ अवसन्न कुशील आदि भी अपनी उस अवस्था का त्याग कर पुनः गच्छ में आना चाहे तो इन सब को गच्छ में लेने का विधान है । लेने के पूर्व गच्छ व्यवस्था के लिए प्रशस्त या अप्रशस्त सभी एकल विहारचर्या वालों के लिए प्रायश्चित्त तप या छेद देकर लेने का वर्णन है ।

पार्श्वस्थादि के लिए एक शर्त और भी कही है कि यदि उनमें कुछ संयम अवस्था शेष रही हो तो तप या छ़ेद प्रायश्चित्त देकर लेना। इसका तात्पर्य यह है कि संयम शेष न हो तो तप या छेद प्रायश्चित्त देकर भी नहीं लेना अर्थात् उचित लगे तो पुनः दीक्षा देकर भी नहीं लिया जा

सकता है उसे नई दीक्षा दी जाती है । किन्तु निकेवल एकल विहारी के लिये यह शर्त नहीं है ।

यहाँ एकल विहारचर्या वालों के लिये **पडिमा** शब्द लगाया गया है किन्तु यह शैली की विचित्रता से ही समझना चाहिए, अपरिस्थितिक एकल विहार पडिमा वाले नहीं समझना । क्योंकि वे तो आज्ञा पूर्वक अभ्यास एवं परीक्षा पूर्वक पडिमा स्वीकार करते हैं बीच में छोड़ कर आने की इच्छा का वहाँ प्रश्न ही नहीं होता एवं पडिमाओ को पूर्ण करके आने पर आदर पूर्वक गच्छ निर्गत से गच्छ सहगत किया जाता है । उसके लिये छेद या तप प्रायश्चित की भी आवश्यकता नहीं होती । अत: यह विधान भी सपरिस्थितिक एकल विहारचर्या सम्बन्धी है । तथा गच्छ में अव्यवस्था न हो, इसके लिये प्रायश्चित्त है । जो गीतार्थ, अगीतार्थ, प्रशस्तकारणक अप्रशस्तकारणक आदि विकल्पों से तप या छेदयुक्त भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है ।

**१३.** व्यव. उ. १ परिहार तप प्रायश्चित्त वहन करने वाले भिक्षु का अकेले सेवा में जाने का वर्णन है । यह भी साधु का परिस्थितिक एकल विहार है । किन्तु यह गच्छ निर्गत नहीं है अपितु गच्छ सेवा कार्य हेतुक है । इससे अन्य साधुओं का भी सेवा में या गच्छ आज्ञा से कहीं अकेले जाना या रहना समझा जाता है । इस एकल विहार में भिक्षु सैकड़ों मील भी जा सकता है तथा अनेक दिन या महिना भी रह सकता है ।

**१४.** व्यव. उ. १ में सपरिस्थितिक एकल विहारचर्या वाले का ग्रामादि के बाहर अरिहंत सिद्धों की साक्षी से आलोचना करने का वर्णन है ।

गच्छगत साधु के लिये यह स्थिति नहीं होती है । वहाँ तो गुढ, आचार्य, उपाध्याय स्थविर आदि अनेक बहुश्रुत आलोचना सुनने योग्य होते हैं ।

इन सब एकल विहारचर्या के आगम स्थलों का सारांश यह है कि प्रशस्त परिस्थिति में एकल विहारचर्या स्वीकार कर प्रशस्त संयम चर्या में ही विचरण करने वाला पुन: गच्छ में न आना चाहे तो उसे एकल विहारचर्चा का कोई प्रायश्चित्त नहीं है एवं वह संयम की आराधना कर सकता है । गच्छ में आना चाहे तो प्रायश्चित्त लेकर गच्छ में आकर भी आराधना कर सकता है ।







**इन सपरिस्थितिक विहारचर्या के लिये पूर्व ज्ञान या तीन संहनन की प्ररूपणा करना उचित नहीं हो सकती है । किन्तु संयम ढचि, तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय, ४०वर्ष की वय का होना तो सूत्र प्रमाण से आवश्यक है ।**

अप्रशस्त कारणों वाला और अप्रशस्त संयम चर्चा वाला एकल विहारी पार्श्वस्थ आदि की कोटि को प्राप्त करता है एवं संयम का विराधक होता है ।

**१५.** ठाणांग ठाणा. ७ में-सात कारण गणापक्रमण के दिए हैं, जिसमें सातवाँ एकल विहार प्रतिज्ञा धारण करने के संकल्प का कहा है । यहाँ गणापत्रक्रमण का कथन होने से यह एकल विहार सपरिस्थितिक है । अपरिस्थितिक एकल विहार ढप प्रतिमा धारण करने को गणापक्रमण नहीं कहा जाता ।वे तो आचार्य निश्रा एवं सम्पदा में ही गिने जाते हैं ।

## (३) एकल विहार सम्बन्धी अन्य विधान :-

**१.** आचा. श्रु. १ अ॰ ५ उ. ४ में **अव्यक्त** एवं अशान्त स्वभाव वाले को एकल विहार का निषेध किया है एवं उसका अहित-कारक परिणाम बताया है ।ज्ञान से-बहुश्रुत न हो वह **अव्यक्त** है । वय से-सोलह वर्ष से पूर्व **अव्यक्त** है । संयम पर्याय से-तीन वर्ष के पूर्व **अव्यक्त** है ।

**२.** सुयग. श्रु. १ अ. १४ में- वर्णन है कि पंख आने के पूर्व पक्षी की घोंसले में रहने पर ही सुरक्षा है । उसी तरह उक्त अव्यक्त अवस्था तक गुढकुल वास ही श्रेयस्कर है, न कि स्वतन्त्र विचरण या एकल विहारचर्या।

**३.** व्यव. उ. ३ में- नव दीक्षित(३ वर्ष), बालक(१६ वर्ष) एवं तढण (४० वर्ष) वय के भिक्षुओं को आचार्य, उपाध्याय के नेतृत्व बिना रहने का एकांत निषेध है । यहां यह भी कहा गया है कि उक्त तीनों अवस्था के साधु सदा दो के नेतृत्व में ही रहते हैं। अत: इस सूत्र से इन तीन अवस्था वालों को गच्छ मुक्त एकल विहारचर्या धारणा करना स्पष्टत: निषिद्ध है । कोई भी परिस्थिति हो, इस अवस्था तक धैर्य के साथ गच्छवास ही आवश्यक होता है।

यह भी इस सूत्र से स्पष्ट है कि आचार्य उपाध्याय के बिना किसी गच्छ को रहना भी आगमोचित नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि इस सूत्र में प्रश्न उठाकर उसका उत्तर दिया गया है कि श्रमण निर्ग्रन्थ सदा दो के नेतृत्व से ही रहते हैं-(१) आचार्य (२) उपाध्याय अर्थात् कम से

कम दो पदवीधरों की निश्रा बिना किसी साधु का या किसी गच्छ का रहना सर्वथा अनुचित है एवं आगम विरुद्ध भी है। आपवादिक परिस्थिति से कभी किसी को रहना पड़ जाय तो उसे अल्पकालीन ही समझना चाहिए । **अल्पकालीन अपवाद को सदा के लिए उत्सर्ग मार्ग बना लेना पाप है और उसकी पुष्टी करना महापाप है ।**

विशाल गच्छ के लिए व्यवहार भाष्य उद्दे॰ एक में पाँच पदवीधर होना आवश्यक कहा है यथा- १. आचार्य २. उपाध्याय ३. प्रवर्तक ४. गणावच्छेदक ५. स्थविर । यदि इनमें से कोई भी पदवीधर न हो तो उस गण का त्याग कर देने का वहाँ उल्लेख किया है तथा वहाँ रहने से होने वाली असमाधि की अवस्थाओं का दृष्टांत पूर्वक विस्तृत विवेचन किया है ।

उचित भी यही है कि प्रत्येक गच्छ आचार्य, उपाध्याय युक्त हो, तभी परमेष्ठी मंत्र पूर्ण रहता है । उक्त पदों के लिये शास्त्राज्ञा स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में पदों को हानिप्रद मान कर बिना पद के गच्छ चलाना उचित एवं शास्त्रोक्त नहीं हो सकता अपितु तीर्थकर गणधरों की स्पष्टत: आशातना करना होता है ।

(४) व्यव. उ. ४ तथा ५ में- आचार्य, उपाध्याय एवं प्रवतिनी को अकेले विहार करने का स्पष्ट निषेध है । बृहत्कल्प उ. ५ में-साध्वी के अकेले गोचरी आदि किसी भी कार्य से जाने का स्पष्ट निषेध है।

इन स्थलों में साधु साध्वी दोनों के कल्प, अकल्पों का वर्णन होते हुए भी यहाँ सामान्य साधु के अकेले विहार आदि का निषेध नहीं किया गया है ।

बृहत्कल्प भाष्य गाथा ६६० में-गीतार्थ का स्वरूप बताते हुए आगे कहा गया है कि गीतार्थ का एकाकी विहार हो सकता है अन्य गीतार्थ, अगीतार्थ सभी गीतार्थ आचार्य एवं उपाध्याय के नेतृत्व में ही रहते हैं ।

(६) व्यवहार भाष्य उ. १ में- एकाकी विहारचर्या के कारण बताये हैं यथा- १. रोगांतक(मरीमारी) २. दुर्भिक्ष ३. राजद्वेष ४. अन्य भय ५. ग्लानता-शारीरिक या मानसिक ६. ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र की वृद्धि हेतु ७. साथी के काल गत होने से ८. आज्ञा से भेजने पर ।







(७) ओधनिर्युक्ति में एकलविहारचर्या के दो प्रकार कहे है- १. सकारण २. अकारण ।

(१) गीतार्थ का ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिये या आगमोक्त अन्य परिस्थितिओं से किया गया एकल विहार **सकारण** कहा है ।

(२) अनुशासन से घबराकर, स्थान, क्षेत्र आहार, वस्त्र आदि मनोनुकूल प्राप्त करने हेतु एवं अनेक स्थल देखने हेतु किया गया गीतार्थ का एकल विहार भी **अकारण** है तथा सभी अगीतार्थों का एकलविहार तो **अकारण** विहार ही है अर्थात् अगीतार्थों को एकल विहार कल्पता ही नहीं ।

**उपसंहार :-** गीतार्थ एवं बहुश्रुत शब्द एकार्थ में ही प्रयुक्त होते है । जहाँ आगमाकार बहुश्रुत शब्द प्रयोग करते हैं, वहीं व्याख्याकार गीतार्थ शब्द प्रयोग करते हैं । दोनों की जधन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट अवस्था की व्याख्या समान है यथा - (१) आचारांग निशीथ सूत्र एवं अर्थ का धारक (कंठस्थ धारक) जधन्य गीतार्थ एवं बहुश्रुत है । (२) आचारांग सूयगडांग एवं छेदसूत्र के मूल एवं अर्थ का धारी मध्यम गीतार्थ एवं बहुश्रुत है । (३) नौ पूर्व ऊपर के ज्ञानी उत्कृष्ट गीतार्थ एवं बहुश्रुत है ।-***(१) बृहत्कल्प भाष्यपीठिका गा. ६९३ (२) निशीथ चूर्णी पीठिका गा. ४०४ ।***

जो जधन्य गीतार्थ या बहुश्रुत नहीं हो, उसे आचार्य, उपाध्याय पद एवं एकल विहारचर्या निषिद्ध है ।

तथा उसका सिघाडा प्रमुख बनकर स्वतन्त्र विचरना एवं गवेषणा करना भी निषिद्ध है । एकल विहार के इन आगम प्रमाणों के होते हुए भी एकान्त रूप से एकल विहार को अनागमिक कहना या प्ररूपण करना न्याय युक्त नहीं हो सकता है,उत्सूत्र प्ररूपणा करना ही होता है ।

सुज्ञ पाठक आगम श्रद्धा रखते हुए इन प्रमाणों से सही निर्णय लेकर एकान्त प्ररूपण एवं दूषित विचारों से बचें । साथ ही गच्छ व्यवस्था करने में पदों की आवश्यकता समझें एवं स्वतन्त्र प्रमुख बनकर विचरने वाले की योग्यता का ध्यान भी रखें तथा एकल विहार की अपेक्षा पद रहित गच्छ व्यवस्था को अत्यधिक अहितकर एवं आगम विपरीत समझें ।

एकल विहार के इस सम्पूर्ण प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि-

**(१)** भिक्षु का एकल विहार एक विशिष्ट साधना है एवं किसी शारीरिक या मानसिक परिस्थिति में गुजरने वाले के लिए यह एक अवलम्बन-भूत अवस्था है । जिसकी आगमों में जगह-जगह स्पष्ट रूप से आज्ञा एवं प्रेरणा भी है । यह उक्त प्रमाणों से समझा जा सकता है ।

**(२)** एकल विहार का पूर्ण निषेध आचार्य आदि पदवीधारी भिक्षु के लिए एवं साध्वी के लिए है । साधु के लिए पूर्ण निषेध किसी भी आगम में नहीं है, यह ध्रुव सत्य है, इसे झुठलाना आगम विपरीत प्ररूपणा है ।

**(३)** आगम में अव्यक्त भिक्षु के लिए तथा अनुपशांत या अनात्मार्थी भिक्षु के लिए एकल विहार का निषेध है एवं अपरिपक्व पंख वाले पक्षी के समान कच्चे साधकों के लिए गुढकुलवास आवश्यक कहा है । इसी से स्पष्ट होता है कि व्यक्त, उपशान्त, शान्त, आत्मार्थी एवं बहुश्रुत गीतार्थ का एकल विहार निषिद्ध नहीं है ।

अनेक दृष्टिकोणों से युक्त इन आगम वर्णनों के उपलब्ध होते हुए भी जो एकान्त प्ररूपण करते हैं वे सच्चे आगम पक्षकार नहीं हैं। किन्तु वे गतानुगत वृत्ति वाले बनकर आगमों को दोनों आँखों से देखने का प्रयत्न नहीं करने वाले हैं । अपितु एक आंख से देखने की वृत्ति वाले ए क चाक्षुस(कांणे) है, ऐसा समझना चाहिये । ऐसे महानुभावों को चाहिये कि वे इस आगम प्रमाण युक्त संकलन का अध्ययन, मनन करें एवं एक चाक्षुस से द्वि चाक्षुस बनें अर्थात् आगम वर्णित उभय पक्ष के दृष्टिकोणों को समझकर अनेकांतिक सिद्धान्त को स्वीकार करें, तभी शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र के आराधक हो सकेंगे ।

**आगम विढद्ध एकान्त प्ररूपणा करना महापाप है ।**

**अनेकान्त सत्य स्वीकार करना परम धर्म है ।**

**अकल्पनीय एकल विहार करना जिनाज्ञा की चोरी है ।**

## १. विशिष्ट एकल विहार :-

भिक्षु की ग्यारह प्रतिमाएँ, मोयप्रतिमा-चन्द्रप्रतिमा आदि विशिष्ट नियम अभिग्रह एवं रात्रि भर के कायोत्सर्ग आदि युक्त प्रतिमा इत्यादि साधनाएँ विशिष्ट संहनन एवं पूर्वज्ञान वाले ही धारण कर सकते है । जिनका अभी विच्छेद मानना आगम विढद्ध नहीं है ।







## २. निषिद्ध एकल विहार :-

**(१)** आचा॰ १ अ॰ ५ उ॰ ४ में- अव्यक्त का एकल विहार निषिद्ध है । **(२)** आचा॰ श्रु॰ १ अ॰ ५ उ॰ १ में- क्रोधी, मानी, घूर्त आदि का एकल विहार दूषित है । **(३)**सूय॰ श्रु॰ १ अ॰ १४ में- अल्प दीक्षा पर्याय वाले का स्वतंत्र विहार निषिद्ध है । **(४)** व्यव॰ उ॰ ४, सू॰ ११-१२ में कहे नवदीक्षित का(३वर्ष की दीक्षा पर्याय) एवं चालीस वर्ष तक की उम्र वाले भिक्षु का आचार्य उपाध्याय की निश्रा बिना विचरण करना निषिद्ध है ।

ये विहार आगम में निषिद्ध है । इन विहार चर्याओं के करने वाले योग्य अयोग्य कोई भी भिक्षु हो सकते है किन्तु उन सब की आचरणा आगम विढद्ध है ।

## ३. कल्पनीय एकल विहार :-

**(१)** दशवै. चू. २ गा. १० तथा उतरा. अ. ३२ गा. ५ में निर्दिशष्ट सपरिस्थितिक एकल विहार चर्या, कल्पनीय है । **(२)** आचा. श्रु. १, अ. ६ उ. २ में निर्दिष्ट शुद्ध गवेषणा और शुद्ध संयम रूचि से धारण की गई एकल विहार चर्या कल्पनीय है । **(३)** सूय. श्रु. १ अ. १० गा. १२ में निर्दिष्ट मोक्ष प्राप्ति के आश्वासन के साथ कही गई एकल विहार चर्या कल्पनीय है ।

ये एकलविहार आगम सम्मत हैं इन्हें तीन वर्ष की दीक्षापर्याय, चालीस वर्ष की उम्र वाला तथा आचारांग निशीथ सूत्र को अर्थ परमार्थ सहित कंठस्थ धारण करनेवाला स्वीकार कर सकता है । इस योग्यता के पूर्व सकारण किया गया एकल विहार भी आगम विढद्ध है ।

**उपसंहार :-** वर्तमान में अयोग्य एकल विहार चर्या वालों को लक्ष्य में रखकार एकांगी दृष्टि से एकल विहार का सर्वथा निषेध किया जाता है, आगमों के नाम से एकांत अकल्पनीय कहा जाता है और अभी ए कलविहार का विच्छेद है ऐसा माना जाता है यह सब सर्वथा अनुचित कथन है और आगम विपरीत प्ररूपण है ।

अत: इस निबंध में प्रासंगिक आगमोक्त अनेकांत द्रष्टिकोणों को समझ कर एकांत एवं आगम विढद्ध प्ररूपण को महापाप समझ कर

साधु-साध्वी आदि चतुर्विध संघ को विवेक युक्त कथन या लेखन करना चाहिए ।

## कुछ प्रमाणों का स्पष्टीकरण

**(१)** ठाणांग सूत्र तीसरा ठाणा में - साधु के तीन मनोरथ और श्रावक के तीन मनोरथ बताये हैं । साधु के मनोरथ इस प्रकार है- १. जिस समय में जितने आगम उपलब्ध हो उसका अधिक से अधिक अध्ययन करूँ । २. मेरा वह दिन बड़ा कल्याण का होगा जब मैं गच्छ निरपेक्ष होकर एकान्त आध्यात्म साधना के लिए एकलविहार प्रतिज्ञा धारण कर विचरूँगा ३. वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा जब मुझे संलेखना संथारायुक्त पंडित मरण प्राप्त होगा ।

श्रावक का दूसरा मनोरथ भी गृहत्याग कर संयम लेने का है वह भी सभी श्रावकों की नहीं आता है । जिसकी भावना प्रबल हो और योग्यता एवं अवसर हो तो ही उसे संयम प्राप्त होता है । पर मनोरथ है तो कभी किसी को आता भी है विच्छेद नहीं होता । मनोरथ का विच्छेद कहना सर्वथा अनुचित है । वैसे ही साधु के मनोरथ के लिए भी समझना चाहिए ।

**(२)** दशाश्रुत स्कंध सूत्र- आचार्य की संपदा के वर्णन करने के साथ में आचार विनय के भेदों में एकल विहार समाचारी वाले साधु को गच्छ में आचार्य की संपदा रूप गिने हैं । वहाँ कहा है, कि- यदि गुण सम्पन्न साधु एकल विहार को इच्छता हो तो उसे एकल विहार कराये । इसी की चूर्णी के प्रकाशन में लिखा है कि एकलविहार का निषेध करने वाले महापुढषों को इस उक्त वचन पर विश्वास रखना चाहिए । नहीं तो वह अनंत संसारी होना सम्भव रहता है । कहा भी है **'गीतार्थ एकाकी रहतो, पामे पद निर्वाण(जगबहुमान) । अज्ञानी टोले पण भोले, बोडे(डूबे) पत्थर नाव'**- दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति-चूर्णी प्रस्तावना ।

**(३)** बृहत्कल्प सूत्र उद्देशा ५ में साधु व साध्वी दोनों के अनेक कल्पों के विषय में बताते हुए बीच में बताया कि-साध्वी को अकेली गोचरी, जंगल, विहार आदि कोई भी कार्य करना नहीं कल्पता है और साधु के लिए वहाँ कुछ भी नहीं कहा ।

**(४)** व्यवहार सूत्र उद्देशा ४ में आचार्य उपाध्याय को अकेले विचरने की





मनना करी और साधारण साधु के लिये कुछ भी नहीं कहा ।

**(५)** वास्तव में बतीस सूत्र के मूल पाठ में ऐसी कहीं एक लकीर भी नहीं है कि किसी भी साधु को अकेले नहीं रहना और रहे तो प्रायश्चित्त । किन्तु दशवैकालिक और उत्तराध्ययन की मूल गाथा में अमुक परिस्थिति में साधु को अकेले ही विचरना चाहिए ऐसा स्पष्ट प्रेरणात्मक पाठ है।

**(६)** आचारांग सूत्र अध्ययन- ५(१-५-४) में बताया है कि एकल विहार चर्या उसके लिये खराब होती है-'जो अव्यक्त हो' = श्रुतज्ञान से, श्रद्धा से और स्थिरता से तथा जो बात-बात में कषाय करने वाला हो, उसे अनेक बाधाओं को पार करना मुश्किल हो जाता है । हे साधक ! ऐसा तेरे को न होवे इसका सदा विचार करना, यह ज्ञानियों का फरमान है ।

**(७)** आचारांग अध्ययन ५ में (१-५-१) तथा अध्ययन ६ में (१-६-२) एकल विहारी साधु के सम्बन्धी कथन किया गया है । पांचवे अध्ययन में बताया है कि- इस जिन शासन में कई एकल विहार ऐसे होते हैं । यथा- बहु क्रोधी, बहुमानी, बहु मायी, और बहु लोभी, अति बोलने वाले, स्वांग करने वाले, दोष छिपाने वाले, उत्कृष्टता बताने वाले, जो कि गुप्त पणे कई दोष सेवन करे इत्यादि । इसके विपरीत **छठे अध्ययन में कहा हैं कि** इस जिन शासन में कई एकल विचारचर्या वाले होते हैं वे शुद्ध गवेषणा की द्रष्टि एवं रूचि वाले तथा सर्व शुद्धि से संयम पालने वाले होते है । वे बुद्धिमान विचरण करते हुए लाभ अलाभ कष्ट आदि सब कुछ शान्ति से सहन करते हैं इत्यादि । अब हम सोचें कि क्या इन दोनों को नवपूर्वी या पाडिमाधारी कहा जा सकता है ? या ये साधारण एकलविहारी है ?

**(८)** सूयगडांग सूत्र दूसरे अध्ययन में कहा है कि- **एगेचरे ठाणमासणे, सयणे एगसमाहिये सिया** विशेष साधना के लिये भिक्षु को विचरण, स्थान, सयन, आसन में अकेलेपन से समाधि युक्त रहना चाहिए । इस तरह यहाँ आसन, सयन, स्थान व विचरण के एकत्व की प्रेरणा है ।

**(९)** सूयगडांग सूत्र अध्ययन-१०, गाथा ११-१२ में कहा है कि-भिक्षु आधाकर्मी आहार की चाहना भी नहीं करे । उनके साथ संभोग नहीं रखे किन्तु अपने कर्म क्षय करने में लगा रहे । इसी प्रसंग से अगली गाथा

में कहा है कि- **एगत्तमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोक्खो न मुसं ति पास=** अकेले रहना भी स्वीकार कर ले(चाहना कर ले) ऐसा करने से भी मोक्ष (कल्याण) हो सकता है । इसे असत्य नहीं समझना । यहाँ भी गवेषणा दोष के प्रसंग से एकलविहार का निर्देश है और अकेले से मोक्ष नहीं होता, ऐसा भ्रम नहीं रखने का निर्देश है । जिसे कि आचरांग सूत्र के छट्ठे अध्ययन में प्रशस्त कहा है ।

**(१०)** ठाणांग सूत्र आठवें ठाणे में- एकल विहार करने वाले की योग्यता के आठ गुण बताये है । उनमें से ६ गुण तो छट्ठे ठाणे में बताये है कि इन ६ गुणों वाला सिंघाड़ा का मुखिया बन सकता है । इसकी अपेक्षा यहाँ दो गुण विशेष बताये हैं । (१) धैर्यवान और (२) उत्साहवान, इन दो विशेष गुणों का अभिप्राय इतना ही है कि **१.** अकेले में रोगातंक आदि में **धैर्य** रखने की आवश्यकताहोती है । तथा **२.** अकेलेपन से रहने में सदा आनन्द मानने की ढचि तमन्ना रूप **उत्साह** भी आवश्यक है । शेष **६.** विशेषण तो वे ही है जो सिंघाड़े की मुख्यता करके विचरने वाले में कहे हैं । यथा- १. शुद्ध श्रद्धा संपन्न २. पूर्ण सत्यवादी ३. बुद्धिमान ४. बहुश्रुत ५. शारीरिक शक्ति संपन्न ६. कलह रहित स्वभाव वाला अर्थात् शांत स्वभावी, धैर्यवान एवं गंभीर । ये सिंघाड़ा प्रमुख की योग्यता के लक्षण है । इन गुणों के अभाव मे साधुओं को प्रमुख बनकर विचरण करना या चातुर्मास करना नहीं कल्पता है ।

कुछ ही सैकड़ों वर्षों से एकलविहार के एकान्त रूप से निषेध करने की प्रवृत्ति हो जाने से उन्हीं ६ गुणों का यहाँ अर्थ अलग करके वज्र ऋषभनाराच संहनन और नव पूर्व ज्ञान अवश्य होना चाहिए ऐसा अर्थ कर दिया गया है किन्तु मूल पाठ में तो शीर्फ दो गुण ही ज्यादा कहे उनसे कोई ऐसा अर्थ निकले ही नहीं। कहीं मूल में ९ पूर्वज्ञान और वज्र ऋषभ नाराच संहनन कहा ही नहीं । और यहाँ ६ शब्दों का ऐसा अर्थ करेंगे तो किसी को सिंघाड़ापति-मुखिया बनना भी नहीं कल्पेगा । अत: जिसमें सिंघाड़े का मुखिया बनने की योग्यता है उसमें दो गुण अधिक हो तो वह एकल विहार की योग्यता वाला कहा जाता है ऐसा मूल पाठ से सिद्ध होता है । ९ पूर्व ज्ञान और प्रथम संहनन तो भिक्षु पडिमा आदि के लिये आवश्यक कहा भी जा सकता है क्योकि उसमें विशिष्ट तप, रात भर के





काउस्सग आदि अनेक नियम होते हैं । तथापि अंतगड सूत्र में बिना पूर्वों के ज्ञान वाले अनेक साधुओं ने भिक्षुपडिमा धारण की थी ऐसा मूलपाठ में वर्णन है परन्तु उपरोक्त शास्त्रों के प्रमाण वाली यह एकल विहार चर्या एक अन्य ही सपरिस्थितिक साधना है किन्तु पडिमा नहीं है तो भी इसके संबंध में ९ पूर्वज्ञान और संहनन का कथन जबरन जोडा जाता है ।जो आगे दशवैकालिक व उत्तराध्ययन सूत्र का विवेचन देखने से ध्यान में आयेगा कि ९ पूर्व ज्ञान और संहनन का कथन कितना आगमानुकूल है?

**(११)** व्यवहार सूत्र के आठवें उद्देशे मे-ऐसे एकल विहारी स्थविरकल्पी का वर्णन है जिसे डंडा, लाठी, छत्र, चर्म आदि अनेक उपकरण रखने पड रहे हैं और उसे, स्वयं गोचरी जा रहे हों तब क्या करना चाहिए-इस बात का वर्णन है । इसमें वृद्धावस्था, अकेलापन और स्थविरकल्पीपन ये तीनों बातें सोचने योग्य है । विशेष जानकारी के लिए आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के छेद सूत्रों में इसका विवेचन देखें ।

## दशवैकालिक सूत्र :-

**असंकिलिट्ठेहिं समं वसिज्जा, मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी ॥ ९ ॥**
**न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।**
**एको वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥१०॥**

**सरलार्थ :**- साधु को उन्ही के साथ रहना उचित है जिनके साथ रहने में कोई भी प्रकार का मानसिक वाचिक शारीरिक संक्लेश न हो और स्वीकृत चारित्र में किसी प्रकार की हानि न पहुँचे ॥९॥ यदि श्रेष्ठ मुनि न मिले तो क्या करना चाहिए ? इसका समाधान शास्त्रकार अगली गाथा में दे रहे है- अपने से गुणाधिक या गुण सम योग्य निपुण (संयम में) सहायक न मिले तो अकेला ही विचरे और ध्यान रखे कि १८पापों के त्याग को बराबर निभावे । इन्द्रिय विषयों में कहीं भी आशक्त न होता हुआ विचरे । इसका भावार्थ यही हुआ कि- **यदि जिनके साथ रहने में संयम में कोई भी हानि पडे, किसी भी तरह की सक्लेशता रहे तो मुनि को वहाँ भूल कर भी नहीं रहना चाहिए सहर्ष अकेला विचरण करना चाहिए । आत्मारामजी म.सा. ।**

ऐसी स्थिति ९ पूर्वी के लिये नहीं होती है । वे तो विशेष तप, ध्यान, निर्जरा, पडिमा आदि के लिये अनेक उच्च योग्य साधक साथी

के होते हुए भी अकेले जाते हैं । अत: सूत्रोक्त यह भाव साधारण साधु की अपेक्षा ही शास्त्रकार ने कहा हे ऐसा स्पष्ट है । **इसके लिये नौ पूर्वी का कथन चाहे कितना भी प्राचीन क्यों न हो आगम आशय के विपरीत एवं मन कल्पित है ।**

## उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-३२ :-

**आहार मिच्छे मिय मेसणिज्जं, सहाय मिच्छे णिउणत्थ बुद्धिं ।**
**निकेय मिच्छेज्ज विवेग जोगं, समाहि कामे समणे तवस्सी ॥४॥**

**टीका का भावार्थ :-** ज्ञान दर्शन चारित्र के लाभ का इच्छुक साधु ही समाधि का इच्छुक कहलाता है । संयम की प्रवृत्तियों में पुरूषार्थ करने वाला श्रमण कहलाता है । बेला तेला आदि करने वाला तपस्वी कहलाता है । ऐसे श्रमण तपस्वी य समाधि के इच्छुक मुनि यह चाहे अर्थात् इन आगे कहीं जाने वाली चाहनाऐं रखे । जो संयम समाधि के आवश्यक अंग है इनका सदा ध्यान रखे । वे क्या है ? सो आगे कह रहे है- सबसे पहले एषणीय, दोष रहित आहार की ही चाहना रखे अर्थात् मेरे संयम जीवन में आहार आदि(पानी वस्त्र शय्या) में कोई प्रकार का दोष नहीं लगना चाहिये । मेरी गवेषणाशुद्ध है ? या मुझे लाकर देने वाला शुद्ध गवेषणा करता है ? मेरे शरीर के उपभोग में कोई भी अकल्पनीय वस्तु तो नहीं आ रही है ? इसका पूरा ध्यान रख सतर्कता, सावधानी और विवेक करे । यह पहली चाहना है । सर्व प्रथम यह चाह-खप ख्वाईस साधु को संयम जीवन में होनी ही चाहिये । क्योंकि कहावत है कि 'जैसा खायेगा वैसी डकार आयेगी' अत: पहले आहार शुद्धि का ध्यान हो । इसमें भी यह सतर्कता रहे कि आहार मर्यादित और संयमयात्रा को टिकाने पूरता हो, न कि मन और इन्द्रिय का पोषक और अहितकर हो ।

**फिर शास्त्रकार अगली बात कहते हैं** कि साथी साधु तत्वज्ञ बुद्धिमान संयम के योगों में पूर्ण समझ और विवेक रखने वाला सुयोग्य हो जिससे कि कोई भी प्रकार की असमाधि का कारण न बने । योग्य साथी समय पर विशेष लाभकारी होता है । जैसे कि शैलक राजर्षि को योग्य शिष्य ने पुन: धर्म में स्थिर कर दिया था । अत: योग्य साथी के साथ रहने का ही सदा ध्यान रखे । और वह समाधि का इच्छुक साधक ठहरने के लिये योग्य व एकान्त शांन्त मकान प्राप्त करने का सदा ध्यान रखे । ॥४॥







**टीका- अथ काल आदि दोष वशात् चेत् पूर्वोक्त गुण सहाय: शिष्य: न लभेत तदा कि कर्तव्यं तदाह-**

**न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।**
**एक्को वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥५॥**

अब यदि काल आदि दोष वशात् कोई योग्य सहायक साथी न मिले तो क्या करना चाहिये, यह अगली पाँचवी गाथा में कह रहे है ।

**टीका का भावार्थ** - यदि अपने में रहे हुए विनय आदि गुणों में समान या अधिक योग्यता वाला बुद्धिमान, शुद्ध संयम का इच्छुक, सहायक साथी न मिले तब वह साधु अकेला ही शिष्य रहित होकर विचरे,विहार करे और संयम गुण-समिति आदि एवं विनय आदि में कमजोर, अविनीत शिष्य को जबरदस्ती निभाने धकाने की शोशिश न करे । किन्तु चारित्र गुणों में अनुकूल ढचि वाले, असमाधि पैदा नहीं करने वाले, ऐसे विनीत शिष्य के अभाव में अकेला ही विचरे । (यथा-गर्गाचार्य सैकड़ो शिष्यों को छोड कर अकेले ही विचरे) । अब इस परिस्थिति में अकेला विचरता हुआ साधु क्या सावधानी रखे इसकी भलावण देते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि साधु ने सावध योग का त्याग किया है अत: सदा १८ पाप से बचने का पूरा-पूरा ध्यान रखें यह पहली भलावण है और दूसरी भलावण यह है कि पांच ईन्द्रिय विषय अर्थात् शब्द रूप गंध रस और स्पर्श इन पाँच काम गुणों में आशक्त न होता हुआ इन में मन को प्रतिबंधित नहीं करता हुआ, वैराग्य भाव को उपस्थित रखता हुआ, उदासीन भावों को पुष्ट करता हुआ, विचरे । - ***उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३२ गाथा ५ ।***

**उपसंहार :-** इस भाव वाली इस गाथा को दो सूत्र में स्थान मिला है। श्रुति परंपरानुसार भगवान् ने मोक्ष जाते समय जो ३६ अध्ययन फरमाये उसके ३२ वें अध्ययन की यह ५वीं गाथा है । और उसी प्रकार अपने पुत्र मनक के लिये अल्प उम्र जानकर १४ पूर्वी स्वयंभवाचार्य ने सूत्रों का सार लेकर जो दशवैकालिक की रचना करी उसकी दूसरी चूलिका में गाथा नं. १० है ।दोनों चूलिकाएँ विशिष्ट विषय पर है ।

**पहली में**- जो साधक संयम में अस्थिर चित्त हो जाय । उसकी स्थिर होने में पूर्ण सहाय रूप शिक्षा का ही कथन है इसलिये इसका नाम है-

'रतिवाक्य' अर्थात् संयम में ढचि उत्पन्न कराने वाली शिक्षा ।

**दूसरी चूलिका** का नाम है 'विविक्त चर्या' इसमें गच्छ मुक्त होकर ए काकी विहार चर्या वालों का कथन है । शुरू की गाथाओं में संयम की कुछ शिक्षाओं का कथन करके आगे की गाथाओं में यह विषय लिया है । दसवीं गाथा में दो भलावण(हितशिक्षा) देने के बाद आगे अन्य अनेक भलावणें दी है । क्योंकि अकेला होने के कारण उसे और तो कोई कहने वाला रहता ही नहीं । अत: खुद ही विशेष ध्यान रखे- उपरोक्त भलावण के बाद साधु इस बात का भी ध्यान रखे कि मास कल्प आदि मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं करे । अकेले में इसकी संभावना अधिक रहती है । तथा सदा सूत्र निर्दिष्ट मार्ग को समझ कर उसी अनुसार चलने का ध्यान रखे । सूत्र और उसका अर्थ जो जो आज्ञा दे उसी के अनुसार करे ।

रात्रि में सोते, उठते दोनों ही समय आत्म चिन्तन,धर्म जागरण करे । कितने गुण बढाये ? क्या बढाने हैं ? क्या कर सकते हुए भी नहीं कर रहा हूँ ? क्या-क्या मेरे में दोष है ? क्या मुझे दिखते और क्या दूसरों को दिखते ? इस तरह सम्यक् चिन्तन कर स्खलनाओं को निकालने में जागरूक रहे । इत्यादि एकलविहारी के लिए बहुत भलावणें(शिक्षाएँ) दी है । इसलिए इसका नाम भी इस मुख्य विषय के कारण "विविक्तचर्या" रखा है ।

इन दो चूलिकाओं का मिलकर सार यह हुआ कि किसी भी दु:ख से घबराकर साधु संयम नहीं छोडे और यदि अकेले रहने में समाधि हो सके तो वैसा भी करले पर संयम छोडने का विचार तो नहीं करे । तथा अकेले रहने में अनेक खतरे रहते है अत: अच्छी तरह भलावणों-शिक्षाओं के पालन का ध्यान रखे ।

इसप्रकार की परिस्थितिक-निर्देश वाली, अर्थ वाली एवं भलावण युक्त इस गाथा के विषय(अध्ययन) को आगम विहारी ९ पूर्वी जिनकल्पी आदि के लिये कहना आगम आशय नहीं समझ पाने की स्खलना से होता है या जबरदस्ती ठूंस देने की बुद्धि से हो सकता है । तटस्थ वृति से सोंचे तो समझ में आ सकता है कि ९ पूर्वी तो कोई साथी नहीं मिलने आदि की परिस्थिति से अकेले नहीं जाते हैं अत: उसके लिये ऐसी







परिस्थिति के अर्थ वाले और भलावण वाले प्रकरण को फिट करना (जोड़ना) बहुत बड़े ढर्रे रूप भूल है । अत: इस गाथा के लिये और अन्य भी जो उपर अनेक एकल विहारचरिया के प्रसंग आचारांग सूत्र आदि के बताये हैं । उनके लिये ९ पूर्वी आदि का कहते रहना, प्ररूपणा करना, बुद्धिमानों के लिये योग्य नहीं है । और इसे आगमिक भी नहीं कहा जा सकता है । **सूयगडांग सूत्र में** तो आधाकर्मी आदि दोष प्रसंग से स्पष्ट कथन है कि-आधाकर्मी आदि दोष लगे तो- **एकाकीपन की चाहना (अर्थात स्वीकार) करे, परन्तु उस दोष संयुक्त अवस्था में न रहे । इस तरह एकाकीपन से भी मोक्ष हो सकता है, इसमे शंका न करें अर्थात् असत्य नहीं समझे । इस तरह भी मोक्ष होना सत्य है और(अपेक्षा से) अच्छा भी है । अत: कषाय रहित होकर सत्यता पूर्वक संयम में रत रहे ।** यह गाथा-

**एगत्तमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोक्खो न मुसं ति पास ।**
**एसप्पमोक्खे अमुसे वरे वि, अक्कोहणे सच्चरए तपस्वी ॥ १२ ॥**

**संपूर्ण प्रमाणों का सारांश :-**

(१) आगम सम्मत विशिष्ट परिस्थिति हो तो एकलविहार कर सके **-ठाणांग और दो भाष्य के आधार से ।**

(२) अन्य कोई अनुकूल योग्य साथी का संयोग न हो तो एकलविहार कर सके -**दशवैकालिक व उत्तराध्ययन के आधार से ।**

(३) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन प्रकार में से कोई भी गीतार्थता या बहुश्रुतता हो तो एकलविहार कर सके अन्यथा नही करे **-ठाणांग सूत्र व भाष्य के आधार सें ।**(४) तीन वर्ष से कम दीक्षा पर्याय न हो ४० वर्ष से कम उम्र न हो तो एकलविहार कर सके अन्यथा नही करे **-व्यव॰ उद्देशा ३ के आधार से ।**

(५) शरीर की बाह्य हर परिस्थिति में धैर्य रहे, अकेले रहने में पूर्ण उत्साह और प्रसन्नता रहे तो एकलविहार कर सके **-ठाणांग ८ के आधार से ।**

(६) कारण की समाप्ति होने पर एकल विहार छोड़ सकता है **-अनेक टीका भाष्य के आधार से ।**

(७) समर्थता न रहे तो एकलविहार छोड़ सकता है **-व्यवहार सूत्र उद्देशा एक के आधार से ।**

(८) साथी अनुकूल योग्य मिल जाय तो एकलविहार छोड़ सकता है **-दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के आधार से ।**

(९) अन्यथा वृद्धावस्था व उम्र पर्यन्त भी एकलविहार में रह सकता है **-व्यवहार उद्देशा ८ तथा उत्तराध्ययन अध्य॰ २७ के आधार से ।**

## विनयधर्म में स्वाद्वाद

**प्रश्न :** सपरिस्थितिक एकलविहार करने में गुढ के प्रति विनयघर्म का पालन कैसे हो सकता है ?

**उतर :** अनेक आगम स्थलों को देखने से यह सहज समझा जा सकता है कि स्याद्वाद मय जिनागम व जिनवाणी से एकांतिक रूप से साधु का अकेला विचरना निषिद्ध नहीं है । हालांकि निर्ग्रन्थ रूप यह भगवान् का मार्ग विनय प्रधान धर्म है, फिर भी इसके स्याद्वादमय होने से कभी-कभी सत्य, संयम, समाधि और भगवदाज्ञा का अधिक महत्त्व रहता है । कई पच्चक्खाणों में महत्तरागार(बड़ों का आगार) भी नहीं होता है ।

(१) दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि रत्नाधिक के प्रति हमेशा विनय की प्रवृत्ति रखें, फिर भी संयम की हानि न हो इसका भी पूरा ध्यान रखें ।-**अ॰८ गा॰ ४० ।**

(२) बृहत्कल्प सूत्र में किसी गलती या क्लेश के प्रसंग का आचार्य के पास में आलोचना प्रायश्चित्त करना कहा है । वहाँ यह भी कहा है कि यदि वह प्रायश्चित्त आगमानुसार हो तो लेवे । आगमानुसार न होवे तो नहीं लेवे अर्थात् मना कर दे । ऐसा स्पष्ट मूल पाठ में है । वहाँ इसे कोई अविनय नहीं माना गया है ।

(३) व्यवहार सूत्र में-आचार्य संलेखना संथारे आदि मृत्यु के निकट समय में शिष्यों को कह दे कि मेरे पीछे इसको आचार्य बनाना, इस विषय में आगे शास्त्रकार स्वयं कहते है कि वह योग्य लगे तो उसको आचार्य बनाना, नहीं योग्य लगे और दूसरा योग्य लगे तो उसको बनाना । इतना स्पष्ट मूल पाठ में है । नासमझू तो कह सकते हैं कि आचार्य की आज्ञा नहीं मानी परन्तु अगवद् आज्ञा की सत्ता यह है कि-गलत कार्य करना गुढ आज्ञा से स्वीकार नहीं किया जाता, ऐसा उक्त पाठ से स्पष्ट हो जाता है ।

(४) सूत्रकृतांगसूत्र अध्ययन-१०, गाथा १२ में- गच्छ में गवेषणा के दोष आधाकर्मी आदि की शुद्धि बराबर न होने से भी एकलविहार करना श्रेष्ठ एवं मुक्ति प्राप्त कराने वाला कहा है अत: इस स्थिति मे एकल





विहार करना आगमोक्त होता है, उसका निषेध विनयधर्म के नाम से नहीं किया जा सकता ।

(५) ठाणांग सूत्र में अनेक कारण गच्छ छोड़ने के बताये गये है तो क्यों बताये ? गुढ आज्ञा तो नहीं मानना होगा तभी गच्छ छूटेगा । वहाँ बताया है कि -जो संयम ज्ञान की रूचि साधु को है वैसी अनुकूलता गच्छ में न हो । उसे सन्तोष न हो सके तो उस गच्छ को छोड़ सकता है । जहाँ सारणा, वारणा, विनय प्रतिपत्ति की व्यवस्था बराबर न हो, न्याय-अन्याय सब चले, जिसके जो मन में आवे कर गुजरे, ऐसी अव्यवस्था दिखे, आगमानुसार धारणा प्रवृत्ति व्यवहार न हो तो उस गच्छ को छोड़ सकता है । इत्यादि अनेक कारण दिये हैं ।

***इस तरह विनय प्रधान और आज्ञा प्रधान धर्म होते हुए भी यह धर्म एकांतिक न होकर स्याद्वाद मय है। जो इन उपरोक्त ४ आगम स्थलों से अच्छी तरह समझा जा सकता है कि न्याय, सत्य, संयम, समाधि का महत्त्व विनय और गुढ आज्ञा से भी आगे बढ़ जाता है। इनमें भी कोई अविनय आशातना समझले या कह दे तो यही जानना चाहिए कि उसे अभी "निर्ग्रन्थ प्रवचन विनय प्रधान होते हुए भी न्याय मार्ग है" यह समझना शेष है ।***

आगम निरपेक्ष या आगम विपरीत गुढ आज्ञा और व्यक्ति महत्त्व को जिन शासन में स्थान नहीं है । गौतम स्वामी का कथन और समझ भी गलत हो सकता है और प्रायश्चित्त किया जाता है । इसलिए जिस विषय में शास्त्र प्रमाण स्पष्ट हो तो कोई भी बड़े से बड़े छदमस्थ गुढ आचार्यादि का और परम्परा का उससे ज्यादा महत्त्व नहीं हो सकता । आगम तो सर्वोपरि है ही छोटे बड़े सबके लिये । गुढ आज्ञा और परम्परा को उससे उतार ही समझना चाहिए।

**बहुश्रुत की परिभाषा :-** निशीथ भाष्य के पीठिका की अंतिम गाथा में गीतार्थ के समान ही बहुश्रुत के तीन भेद और कंठस्थ श्रुत ज्ञान का कथन किया है अर्थात् इन दोनों की परिभाषा सरीखी की गई है ।यथा- १. जघन्य बहुश्रुत-आचारांग, निशीथसूत्र कंठस्थ अर्थ सहित । २. मध्यम बहुश्रुत- छेदसूत्रों का कंठस्थ अर्थ सहित ज्ञान । ३. उत्कृष्ट बहुश्रुत- पूर्वों का धारक( नौ पूर्व से अधिक ) ।

# भिक्षु की स्वतंत्र गोचरी

अनेकांत मूलक इस जिन शासन के किसी भी विधान को एकान्त के आग्रह में नहीं डालना चाहिये । तदनुसार अनेक आगम विधानों तथा वर्णनों से यह स्पष्ट है कि समूह में रहते हुये भी सामूहिक अथवा असामूहिक रूप से गोचरी लाना, खाना साधु कर सकता है ।

**दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ५ उद्देशा एक में** वर्णित आहार करने की विधि भी स्वतंत्र गोचरी की प्रमुखता से कही गई है ।

**आचारांग सूत्र के** अनेक विधानों से भी स्वतन्त्र गोचरी की पद्धति सिद्ध होती है ।

आगमों में वर्णित अनेक प्रकार के अभिग्रहों से एवं दत्ति परिमाण से की जाने वाली तपस्याओं से भी स्वतंत्र गोचरी की स्पष्टता होती है।

साध्वियों द्वारा आचरित सत्तसत्तमिया आदि भिक्षुप्रतिमाएँ स्वतंत्र गौचरी की स्पष्टत: सिद्धि करने वाली है । स्वतंत्र गौचरी के बिना वे प्रतिमायें नहीं हो सकती । इस प्रकार अन्तगड सूत्र से साध्वियों की स्वतंत्र व्यक्तिगत गोचरी भी सिद्ध है । तो साधु के लिये तो निषेध होने का प्रश्न ही नहीं है ।

**उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ में** कहे गए **संभोग पच्चखाण** और **सहाय पच्चखाण** के वर्णन स्वतन्त्र गोचरी को एक विशिष्ट लाभकारी आनन्दकारी प्रवृति बताते हैं ।

संसार मार्ग से स्याद्वाद के त्याग मार्ग में भिन्नता है । यहाँ समय पर सेवा का भी महत्व है, तो समय पर आहार सम्बन्ध अलग करना और सहायता लेने देने का त्याग करना भी एक महत्वशाली आचरण बताया गया है । अन्यत्र आगम में भी ऐसी प्रतिज्ञा है । चौभंगी भी आती है कि-कोई साधु खुद का काम करावे भी खुद भी करे, कोई दूसरों से करावे(अर्थात् सेवा ले) पर करे नहीं । कोई सेवा करे पर सेवा करावें नहीं और कोई सेवा करने कराने का सम्पूर्ण त्याग कर लेवे । **आचा. २ अ. ७ उ. २ और आचा. १ अ. ८ उ. ५,७** -तीन जगह ऐसी चौभंगी है ।

आचारांग सूत्र अध्ययन ८ में सूचित चौभंगियें तो स्वतंत्र गोचरी की स्पष्टत: प्रेरक है ।





धर्मढचि अणगार, गौतमस्वामी, अर्जुनमाली के गोचरी के वर्णन तो स्वतंत्र गोचरी के क्रियात्मक(प्रेक्टीकल) उदाहरण है ।

छ सगे भाईओं में दो-दो की स्वतंत्र गोचरी का उदाहरण भी अन्तगड सूत्र में अत्यंत प्रेरक ढंग से है ।

आज परम्परा के नाम मे स्वतन्त्र गोचरी का निषेध किया जाता है और उसे अनुचित समझा जाता है । वह आगम विपरीत एवं एकान्त द्रष्टि वाला प्ररूपण है । उससे अनेक अभिग्रह आदि के लाभ से साधकों को वंचित रखा जाता है ।

जिस पद्धति या परम्परा के आग्रह से आगमिक साधनाओं का विच्छेद होता हो तो उनका एकान्त आग्रह करना अनुचित भी होता है ।

३२ आगमों में सामुहिक और स्वतन्त्र दोनों प्रकार की गोचरी का वर्णन है । ओघ निर्युक्ति में इसी बात का समर्थक वर्णन है । वहां यह बताया गया है कि कारण से ही माण्डलिक(सामुहिक) आहार किया जाता है किन्तु पूर्ण योग्य और कारणाभाव वाले संत स्वतंन्त्र गोचरी करते है । कारण इस प्रकार कहे है -

बाल, ग्लान, वृद्ध, पदवीधर, नए आगन्तुक साधु और तपस्वी आदि की सामुहिक गोचरी होती है । इन कारणों के अभाव में योग्य साधना प्रिय साधक स्वतंत्र एक-एक या दो-दो से गोचरी करते हैं ।

इस प्रकार वहाँ विस्तृत वर्णन में सामुहिक गोचरी को आपवादिक व्यवस्था कही है और योग्यता सम्पन्न साधको के लिए स्वतन्त्र गोचरी को विधि मार्ग बताया गया है जो आगम वर्णनों से भी अविढद्ध है ।

तात्पर्य यह है कि सेवा आदि कारणों के अतिरिक्त योग्य साधकों को अकेले या दो से स्वतंत्र गोचरी लाना धामना खाना अभिग्रह तप करना यह आगमिक विधि मार्ग है, ध्रुव मार्ग है तथा संयमोन्नति एवं एषणा शुद्धि का मार्ग है ।

इसमें साधकों को आत्म सन्तुष्ठी, संयमोन्नति, अभिग्रह पालन, तप वृद्धि, समय का बचाव, मौन साधना, समाधि साधना आदि साधनाओं का लाभ होता है । आगम कालीन पद्धति का पालन एवं पुनढद्धार होता है । जिससे गच्छ में होने वाली छिन्न भिन्नता, टकराव, मनमुटाव,

स्वच्छन्द अकल्पनीय एकल विहार की स्थितिएँ, सन्तों के अन्तर मानस में गच्छीय साधना में असन्तुष्टता आदि दोषों का निराकरण होता है ।

**आगम वर्णन अनुसार-** (१) गौतम स्वामी अपने बेले का पारणा लेने स्वयं अकेले जाने एवं खाने में कोई अपमान या अव्यवहारिकता नहीं समझते । (२) धर्म रूचि अणगार गुढ के साथ रहे हुए मास खमण का पारणा स्वयं लावे तो भी आत्म कल्याण ढकता नहीं है । (३) नवदीक्षित अर्जुनमाली का बेले के पारणे में स्वयं जाना एवं महान् कर्मों की निर्जरा करना भी एक अनुपम आदर्श हैं । (४) कृष्ण के ६ भाई, मुनि के अलग-अलग गोचरी जाने का वर्णन यह सिद्ध करता है कि -

जिसे आज का मानव या संसार-व्यवहार अवगुण रूप में देखना चाहता है उसे ही आगम में साधु के लिए विशिष्ट साधना माना गया है।

संसार व्यवहार में सामुहिकता आदर्श गिनी जाती है तो साधना जीवन में असामुहिकता आदर्श कही गई है । साधु का दूसरा मनोरथ ही एकल विहार चर्या रूप बताया गया है । तथा यत्र तत्र आगमों में आत्मा को एकत्व सें भावित करने की प्रेरणा की गई है । सामुहिक गोचरी में और उसमें भी ज्यादा समूह इकट्ठे होने में आहार एवं पानी में अनेक सूक्ष्म या स्थूल दोष लगने की संभावना रहती है ।

जब कि **स्वतन्त्र गोचरी** और स्वतन्त्र एकलविहार का एकान्त निषेध अपना लिया जाता है तो गुणवर्धक एकलविहार और स्वतन्त्र गोचरी का मार्ग अवढद्ध हो जाता है और अवगुण रूप स्वच्छन्दों का मार्ग तो विरोध करने पर भी नहीं ढकता है । इसी के फलस्वरूप जिनशासन में स्वच्छन्द विहार की वृद्धि होती रहती है ।

यदि पहले से ही सुन्दर विधि विधानों के साथ आगम चिन्तनपूर्वक आगम सम्मत स्वतन्त्र विहार एवं स्वतन्त्र गोचरी को अवढद्ध न करके साधकों को अवसर दिया जाए तो दूषित तत्वों का मार्ग अवरूद्ध होगा और योग्य का आज्ञापूर्वक मार्ग खुलेगा जिससे जिन शासन में शुद्ध तत्वों की संख्या बढ़ेगी और अशुद्ध तत्वों की संख्या ढकेगी ।

प्रत्येक प्रावधान या व्यवस्थाओं में लाभ और हानि दोनों अलग-अलग अंश में निहित होते हैं । अपेक्षित हानि या लाभ के बिना कोई भी







प्रवृति नहीं होती है । तब किसी भी आगम सम्मत समाधिकारक साधना को विकसित करने वाली चित्त समाधि की प्रवृत्तियों का हानि के नाम से एकान्त निषेध करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता ।

**स्वतंत्र गौचरी और स्वतंत्र विहार की योग्यता :-** (१) तीन वर्ष की दीक्षा हो । (२) आचारांग निशीथ का धारक अर्थात गीतार्थ या बहुश्रुत हो । (३) धैर्यवान, गंभीर, शांत स्वाभावी हो। (४) प्रियभाषी और मर्यादित भाषी हो । (५) गवेषणा की परीक्षा में उतीर्ण हो । (६) किसी भी पदार्थ में प्रतिबद्ध न हो, आशक्ति न हो, कोई भी व्यसन न हो । (७) सदा कोई अभिग्रह धारण करके गोचरी जावे । (८) दूसरों के लिए तिरस्कार पूर्ण व्यवहार एवं भाषा का प्रयोग नहीं करने वाला हो । (९) छेदसूत्र के विवेचन का कम से कम दो बार वांचन किया हो । (१०) नियमित स्वाध्याय करे, बेकार समय व्यतीत न करे । (११) सेवा की आवश्यकता होने पर आज्ञा प्राप्त होते ही तत्पर रहने वाला हो। (१२) श्रद्धा प्ररूपणा में आगम निरपेक्ष बुद्धि न हो । (१३) गृहस्थों एवं अन्य संप्रदाय के साधुओं के प्रति सद्भावना एवं सहायता हो । (१४) उत्सर्ग अपवाद का विवेकपूर्वक निर्णय कर सकने वाला हो । (१५) आगम सम्मत प्रायश्चित्त स्वीकार करने की सरलता हो । (१६) ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के सभी नियम उपनियमों में उत्तीर्ण हो । (१७) महिने में कम से कम चार दिन तपस्या करे(आयम्बिल या निवी या उपवास) । (१८) औषध सेवन नहीं करे, सदा विशेष विगय(धारविगय) सेवन नहीं करे। विशेष कारण बिना मक्खन, शहद न लेवे और सकारण ले तो मर्यादा (१-२ तोला) से अधिक न ले । (१९) स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम उपनियम आहार विहार का अनुभवी हो । (२०) विनय सहित अर्ज कर स्वतंत्र गोचरी की आज्ञा प्राप्त करना । (२१) आपवादिक परिस्थिति में अल्प योग्यता वाला भी गीतार्थ की आज्ञा से एक चर्या धारण कर सकता है।

# सांवत्सरिक विचारणा संवाद

**जिज्ञेश–** संवत्सरी पर्व की प्राचीन तिथी कौनसी है ?

**दिनेश–** भादवा सुदी पंचमी ।

**जिज्ञेश–** आजकल चौथ की संवत्सरी भी होती है वह क्यों?

**दिनेश–** ऐसा एक कथानक प्रचलित है कि किसी एक क्षेत्र के चातुर्मास में एक राजा के आग्रह से एक आचार्य को चौथ की संवत्सरी करनी पड़ गई थी, उसी को परम्परा बनाकर आज तक भी कोई चौथ की संवत्सरी करते हैं ।

**जिज्ञेश–** चौथ की संवत्सरी कौन मनाते है ?

**दिनेश–** श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज ।

**जिज्ञेश–** पाँचम की संवत्सरी कौन मनाते है ?

**दिनेश–** श्वे. स्थानकवासी समाज एवं श्वे. तेरापंथी समाज ।

**जिज्ञेश–** दिगंबर समाज संवत्सरी कब मनाते है ?

**दिनेश–** दिगम्बर समाज भी संवत्सरी भादवा सुदी पंचमी की मनाते थे, किन्तु उन्होने संवत्सरी के बाद नव दिन आराधना के रखे एवं धीरे-धीरे भादवा सुदी पंचमी का महत्व कम होकर धर्माराधना के अन्तिम दिन चतुदर्शी का महत्व अधिक हो गया और उसी दिन के लिए संवत्सरी का सा महत्व प्रचलित हो गया । फिर भी उनका पर्युषण पर्वाराधन भादवा सुदी पंचमी से ही प्रारम्भ होना माना जाता है ।

**जिज्ञेश–** जैन के चार मुख्य फिरके है उसमें चतुर्थी वाले कितने है एवं पंचमी वाले कितने है ?

**दिनेश–** श्वे. मूर्तिपूजक के अतिरिक्त तीनों जैन फिरके भादवा सुदी पंचमी की संवत्सरी पर्व मानने वाले है । श्वे. मूर्तिपूजक में भी कोई समुदाय पंचमी की मान्यता वाले हैं ।

**जिज्ञेश–** चतुर्थी की संवत्सरी मानने वाले भी क्या पंचमी की प्राचीनता एवं मौलिकता स्वीकार करते हैं ?

**दिनेश–** हाँ, चतुर्थी की संवत्सरी मनाने वाले सभी सूज्ञ साधक पंचमी की





मौलिकता एवं प्राचीनता सहर्ष स्वीकार करते हैं एवं चतुर्थी का मनाना भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के सैकडों वर्ष बाद चलाई गई परम्परा मानते हैं ।

**जिज्ञेश–** एक आचार्य ने एक नगर में चतुर्थी की संवत्सरी कारण वशात् की थी तो उसे सदा के लिए परम्परा क्यों बनाई ?

**दिनेश–** समाज में ऐसी परम्पराएँ यों ही चल पड़ती है । पीछे की समाज उसे ध्रुव सिद्धांत बना लेती है । इसका कारण अविचारकता एवं भक्ति का अतिरेक ही समझना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** चतुर्थी की संवत्सरी करना क्या आगम विरूद्ध है ? उसका कोई प्रायश्चित्त है ?

**दिनेश–** चतुर्थी की संवत्सरी करना आगम आज्ञा का उल्लंघन करना है एवं उसका शास्त्र में प्रायश्चित कहा है ।

**जिज्ञेश–** इसका आगम प्रामण क्या है ?

**दिनेश–** निशीथ सूत्र उद्देशक १० का ३६ एवं ३७ वाँ सूत्र है ।

**जिज्ञेश–** उस सूत्र में क्या वर्णन है ?

**दिनेश–** निशीथसूत्र के इन दो सूत्रों का आशय इस प्रकार है-1.संवत्सरी का जो निश्चित दिन है उस दिन संवत्सरी पर्व आराधना नहीं करना एक अपराध है ।2.संवत्सरी के निश्चित दिन संवत्सरी पर्व आराधना न करके अन्य किसी भी दिन संवत्सरी पर्व की आराधना करना भी अन्य अपराध है ।इन दोनों अपराधों को करने वाला श्रमण गुढ चौमासी प्रायश्चित का भागी होता है।

**जिज्ञेश–** संवत्सरी का निश्चित दिन तो आजकल चतुर्थी और पंचमी दोनों प्रचलित है न ? तो प्रायश्चित किसको आता है ?

**दिनेश –** निशीथ सूत्र का यह पाठ तो अतिप्राचीन एवं गणधर रचित है तथा चतुर्थी की परम्परा तो वीर निर्वाण के सैकडों वर्ष बाद की मानी जाती है । पंचमी की निश्चित तिथि ही आगम कालीन है । और आगम निशीथ सूत्र का उक्त विधान भी पंचमी की अपेक्षा ही है ।

**जिज्ञेश–** पंचमी का स्पष्ट प्रमाण क्या है ?

**दिनेश–** चतुर्थी या पंचमी किसी भी दिन संवत्सरी मनाने वाले सभी

साधक पंचमी को मौलिक, प्राचीन एवं आगम कालीन सहर्ष स्वीकार करते है अर्थात् पंचमी की मौलिकता स्वीकार करने में सभी साधक ए क मत है, उसके लिए किसी का विरोध है ही नहीं । यह सत्य हकीगत है । यही पंचमी की प्राचीनता का प्रबल प्रमाण है।

आगम में संवत्सरी का एक निश्चित दिन होने का निर्देश है और आगम की व्याख्या में अनेक स्थानों पर **भादवा सुदी पंचमी** का ही निर्देश किया गया है । प्रचलित चतुर्थी के लिए भी एक राजा और एक आचार्य का घटित कथानक दिया जाता है उसमें भी पंचमी की ही मौलिकता स्पष्ट होती है एवं चतुर्थी तो बहुत बाद में चलाई गई परम्परा से है, यह भी स्पष्ट है ।

**जिज्ञेश–** निशीथ सूत्र में निश्चित तिथी की संवत्सरी आराधना करने के अतिरिक्त अन्य संवत्सरी सम्बन्धी क्या-क्या विधान है ?

**दिनेश–** निशीथ सूत्र उदेशक १० में अन्य भी संवत्सरी सम्बन्धी विधान है, वे ये है–1.संवत्सरी के दिन तक श्रमण को लोच अवश्य कर लेना चाहिए । गो रोम से छोटे बाल हो तो लोच करना आवश्यक नहीं है । 2.संवत्सरी के दिन श्रमण को चौविहार उपवास करना आवश्यक है । उसे किंचित भी आहार या पानी संवत्सरी के दिन सेवन नहीं करना चाहिए।3.पर्यूषण कल्प नामक दशाश्रुत स्कंध सूत्र का आठवाँ अध्ययन है जिसका संवत्सरी के दिन वाचन श्रवण चिंतन मनन करना आवश्यक है उसे गृहस्थ परिषद में नहीं सुनाना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** निशीथसूत्र के इन विधानों में संवत्सरी प्रतिक्रमण संबंधी विधान नहीं है क्या ?

**दिनेश–** वहाँ निशीथ सूत्र में उपरोक्त साध्वाचार के विशेष विधान है । प्रतिक्रमण सम्बन्धी वहाँ कोई विधान नहीं है । प्रतिक्रमण तो श्रमणों का सामान्य आवश्यक विधान है अत: विशेष विधानों में उनके कथन की कोई आवश्यकता भी नहीं है ।

**जिज्ञेश–** श्रमण-श्रमणियों को संवत्सरी प्रतिक्रमण करना विशेष कर्तव्य नहीं है क्या ?

**दिनेश–** चौवीसवें तीर्थंकर के शासन में श्रमण श्रमणियों को नित्य उभयकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है जिससे श्रमण नित्य ही व्रत शुद्धि







एवं क्षमापना भाव में उपस्थित होता है । यह प्रतिक्रमण धर्म वाले श्रमणों का दैवसिक ध्रुवाचार है । इसीलिए संवत्सरी आराधना के इन विषयों में इसका अलग से कथन नहीं किया गया है ।

**जिज्ञेश–** पक्खी, चौमासी एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण का जो अलग महत्त्व माना जाता है वह किस अपेक्षा से ?

**दिनेश–** श्रावक वर्ग में उभयकाल नित्य प्रतिक्रमण करना आवश्यक नहीं होता है । कुछ श्रावक ही नित्य प्रतिक्रमण करते हैं किन्तु अधिकांशत: पाक्षिक, चौमासी या संवत्सरी प्रतिक्रमण करने वाले होते है । अत: उनकी बहुलता के लक्ष्य से श्रावक समाज की अपेक्षा पाक्षिक, चौमासी एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण का महत्त्व समझना चाहिए।

**जिज्ञेश–** ज्ञाता सूत्र के पाँचवें अध्ययन में श्रमणों के लिए भी पर्व दिन चौमासी, पक्खी के प्रतिक्रमण सम्बन्धी वर्णन है न ?

**दिनेश–** ज्ञाता सूत्र में वर्णित श्रमण २२वें तीर्थंकर के शासनवर्ती थे। दूसरे तीर्थंकर से २३वें तीर्थंकर तक के शासनवर्ती श्रमणों को नित्य दैवसिक, रात्रिक-प्रतिक्रमण करना आवश्यक नहीं होता है । इसलिए श्रावक वर्ग के समान उनके भी पर्व तिथियों को विशेष रूप से प्रतिक्रमण होता है । इस अपेक्षा से ही ज्ञाता सूत्र का वह वर्णन है ।

**जिज्ञेश–** निशीथ सूत्र के अतिरिक्त अन्य किसी आगम में संवत्सरी सम्बन्धी कुछ भी विधान है ?

**दिनेश–** समवायांग सूत्र समवाय ७० में कुछ विधान है जिसका आशय यह माना जाता है कि चौमासे का एक महिना बीस दिन बीतने पर एवं सित्तर दिन शेष रहने पर संवत्सरी पर्व आराधना करना चाहिए । इसके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई विषय नहीं है । इस सूत्र की टीका में भी भादवा सुदी पंचमी का ही कथन किया गया है ।

**जिज्ञेश–** कल्प सूत्र में भी संवत्सरी सम्बन्धी विधान है न ?

**दिनेश–** कल्प सूत्र ३२ आगम में नहीं है एवं ४५ आगम में भी इस सूत्र की गिनती नहीं की जाती है । वह दशाश्रुत स्कंध के आठवें अध्ययन के नाम से अन्य अनेक उचित अनुचित मिश्रणों का पिंड बनाया गया सूत्र है । इस कल्पसूत्र का प्रथम सूत्र संवत्सरी विषयक है जो तर्क संगत भी नहीं है । आगम विपरीत भी है एवं मनगढंत बनाया गया सूत्र है । इस

विषय की अन्य विस्तृत जानकारी इसी पुस्तक में देखनी चाहिए।

**जिज्ञेश–** स्थानकवासी, तेरापंथी एवं दिगम्बर ये तीनों जैन फिरके वाले पंचमी को स्वीकार करने वाले हैं तो भी ये कभी चतुर्थी को और कभी पंचमी को संवत्सरी करते हुए देखे जाते हैं । स्थानकवासी समाज की विभिन्न समुदायें भी एक ही वर्ष में चतुर्थी, पंचमी, दो संवत्सरी मनाते हुए देखी जाती है तथा संवत्सरी पर्व की एकता अनकेता के नाम से इन पंचमी पक्षवालों में भी आपस में विवाद क्यों खड़े होते रहते है ?

**दिनेश–** इनमें दो विभाग है, एक विभाग प्रतिक्रमण के समय पंचमी के घडीपल होने का आग्रह रखता है ।दूसरा विभाग पचांग में लिखी पंचमी को स्वीकार करता है । यही विवाद और विभेद का मुख्य कारण है।

**जिज्ञेश–** इन दोनों विभागों में कौन किधर है ?

**दिनेश–** श्वे. तेरापंथ, स्थानकवासी श्रमण संघ एवं प्राय: दिगम्बर समाज का एक सम्मिलित संगठन है । जो पंचांग में लिखी पंचमी को संवत्सरी करने के निर्णय में संकल्प बद्ध है । यह पहला विभाग है ।

दूसरे विभाग में शेष बची हुई स्थानकवासी की कुछ स्वतन्त्र संप्रदाएँ है । वे अस्त तिथि की प्रमुखता से पर्व करती है । इसे अपनी प्राचीन(२००-२५० वर्षकी) परम्परा समझती है एवं प्रतिक्रमण के समय घड़ियों पलों में पंचमी आने का ध्यान रखती है । इस कारण ये समुदाय कभी पंचांग में लिखी चतुर्थी को संवत्सरी करती है कभी पंचांग में लिखी पंचमी को संवत्सरी करती है ।

**जिज्ञेश–** स्थानकवासी श्रमण संघ वाले भी कभी चतुर्थी को संवत्सरी करते हुए देखे जाते हैं, ऐसा क्यों ? ये तो महासंघ में बंधे हुए है न ?

**दिनेश–** इनमें भी कई प्रमुख श्रमण परम्परागत अस्ततिथि की मान्यता वाले हैं । वे कभी पूर्व संस्कारों के प्रवाह में आ जाते हैं तब चतुर्थी को संवत्सरी करते हुए देखे जाते हैं ।

**जिज्ञेश–** प्रतिक्रमण के समय घड़ी पल पंचमी का देखना उचित है ?

**दिनेश–** ऊपर बताया गया है कि श्रमणों के लिए संवत्सरी का आगमिक महत्त्व उपवास आदि कर्तव्यों के लिए है, प्रतिक्रमण के लिए नहीं । आगम में संवत्सरी के प्रतिक्रमण करने सम्बन्धी प्रायश्चित्त न कह कर





उपवास न करने का प्रायश्चित कहा है । अत: पंचमी के घडीपाल को प्रतिक्रमण के लिए खोजना उचित नहीं है । उपवास के योग्य पंचमी का दिन कौनसा है यह खोजना एवं सोचना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** पंचमी की घडिएं साडे चार बजे समाप्त हो जाए तो प्रतिक्रमण के समय पंचमी के घडी-पल देखने वाले प्रतिक्रमण कब करते?

**दिनेश–** ऐसी परिस्थिति में वे कई लोग कभी साडे चार बजे ही प्रतिक्रमण कर लेते हैं ।

**जिज्ञेश–** असमय में प्रतिक्रमण करना उपयुक्त है क्या ?

**दिनेश–** नहीं । ऐसा करने से हास्यपात्र बनना पड़ता है ।

**जिज्ञेश–** शास्त्र में संवत्सरी का उपवास करना प्रमुख कर्तव्य है तो उसे पंचमी के घडी पल से करने का ध्यान रखना चाहिए क्या ?

**दिनेश–** घड़ी-पल की पंचमी से उपवास किया जाना सम्भव भी नहीं है और ऐसा उपवास जैन मान्यता से विपरीत और हास्यास्पद होता है ।

**जिज्ञेश–** ऐसा क्यों ?

**दिनेश–** चौथ के दिन ४बजे पंचमी की घड़ियाँ चालू होकर दूसरे दिन ३बजे समाप्त हो जाए तो घडीपल की पंचमी करने वाला चतुर्थी को चार बजे तक खाएँगा और पंचमी को ३ बजे बाद पारणा कर लेगा । इस प्रकार आगम से चतुर्थी का भी उसके उपवास नहीं होगा और पंचमी का भी नहीं होगा ।अत: उपवास तो पंचांग में लिखी तिथी से ही करना ठीक होता है । वही पंचाँग की तिथि निश्चित तिथी होती है । घडी पल से उपवास करना तो जैन क्या, जैनेत्तर समाज भी मान्य नहीं करती है ।

**जिज्ञेश–** क्या अस्ततिथि के आग्रह वाले ऐसी स्पष्ट प्रमाणयुक्त वार्ता को नहीं समझ सकते ।

**दिनेश–** प्रतिक्रमण और उपवास में से आगम में उपवास का महत्व है यह जब तक नहीं समझे, वहाँ तक वे प्रतिक्रमण की प्रमुखता में उलझे रहने के कारण इस वार्ता को सहज समझ ही नहीं सकते एवं स्वीकार भी नहीं कर सकते हैं ।

**जिज्ञेश–** उदय अस्त के सम्बन्ध में आगम या ग्रंथों में कुछ कथन है।

**दिनेश-** ३२ आगमों में अथवा ४५ आगमों में ६ पर्व तिथियों का एवं चातुर्मासी, संवत्सरी पर्व दिन का निर्देश है किंतु उदय-अस्त, घडी-पल आदि के हिसाब का कोई निर्देश या संकेत भी नहीं है । ***प्राचीन जैन ग्रंथो में उदय तिथि को अर्थात् प्रचलित व्यवहारिक तिथि को ही पर्वाराधन मनाने की प्रेरणा की गई है उसी की औचित्यता बताई गई है ।***

**जिज्ञेश-** जैन ग्रंथ के उन वाक्यांशों को अर्थ सहित स्पष्ट करावें ?

**दिनेश-** ***धर्म कर्मादिषु (प्रगट) तिथिरूपा तिथिरेव ग्राह्या । तिथिश्च प्रातः प्रत्याख्यान वेलायां या स्यात सा प्रमाणम् । सूर्योदयानुसारेणेव लोके पि दिवसादि व्यवहारात् । आहुरपि -***

**गाथा -** **चाउम्मासि य वरिसे, पक्खी य पंचअट्ठमीसु ।**
**ताओ तिहिओ जासिं, उदेइ सूरो न अण्णाओ ।१।**
**पूआ पच्चक्खाणं, पडिक्कमणं तह य नियम गहणं च ।**
**जीअे उदेइ सूरो, तीए तिहिए उ कायव्वं ।२।**
**उदयम्मि जा तिहि सा पमाणं, इयराए कीरमाणीऐ ।**
**आणाभंग अणवत्था, मिच्छत्त विराहणं पावे ।३।**

**भावार्थ-** धर्म कार्यों में जो व्यवहारिक तिथि होती है वही तिथि स्वीकार करनी चाहिए । चातुर्मासी, संवत्सरी, पंचमी, अष्टमी, पक्खी आदि की वे ही तिथिएँ होती है जिनमें सूर्य उदय होता है, अन्य तिथि नहीं । पूजा प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, नियमग्रहण आदि उदय तिथि-व्यवहारिक तिथि के अनुसार करना ही प्रमाणिक होता है । अन्य अव्यवहारिक तिथि को उक्त कार्य करने से आगम आज्ञा भंग करने का दोष लगता है एवं अन्य भी अनेक दोष लगते है । - ***अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ३ तिहि शब्द ।***

**जिज्ञेश-** यह प्रमाण कहाँ से प्राप्त किया है ?

**दिनेश-** स्था. जैन कोन्फ्रंस का प्रमुख पत्र **जैन प्रकाश** ३ फरवरी १९९१, के पाक्षिक पत्र में प्रकाशित श्रमण संघीय महामंत्री श्री सौभाग्य मुनिजी म.सा. **कुमुद** के निबंध से प्राप्त किया है ।

**जिज्ञेश-** घड़ी-पल देखकर ही पर्व तिथि का निर्णय करने की परंपरा जो चल रही है उसे छोड देना कहाँ तक उचित है ?

**दिनेश-** परंपराएँ तो कई बनती रहती है एवं बदलती रहती है । कोई भी ऐसी समुदाय नहीं है जो कि यह दावा कर सके कि हमारी समुदाय में







५०-१०० वर्ष में कोई भी परंपरा नहीं बदली गई । अतः यहां परम्परा का तर्क एवं आग्रह महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

**जिज्ञेश-** क्या परम्पराओं का कुछ भी महत्व नहीं है ? कोई भी परंपरा बदली जा सकती है ?

**दिनेश-** 1.कोई भी परंपरा किसी भी आगम से विपरीत है तो समझ में आते ही उनका परिवर्तन करना सर्वथा उचित है । उसका आग्रह रखना सर्वथा अनुचित है । 2. कोई परंपरा के संबंध में आगम में न सम्मति है और न विरोध है, उस परंपरा के संबंध में क्षेत्रकाल की अपेक्षा हानिलाभ एवं समाज की शांति, एकता आदि का विचार कर निर्णय करना चाहिए 3. जो परम्परा आगम सम्मत है, आगम आज्ञा एवं भगवादाज्ञा रूप है, उसका परिवर्तन करना या उसके परिवर्तन का नया सिद्धान्त बनाना जिन शासन का महान अपराध है । यह अधिकार किसी को भी नहीं होता है, किन्तु व्यक्तिगत या अल्प समय के लिए परिस्थिति वश उस परंपरा में अपवाद सेवन करना एवं प्रायश्चित्त ग्रहण करना जिनशासन में क्षम्य है।

**जिज्ञेश-** संवत्सरी के इस प्रकरण में परंपरा में उक्त तीन विकल्पों में कौनसा विकल्प उपस्थित है ?

**दिनेश-** निशीथ सूत्र के प्रमाण से संवत्सरी पर्व के दिन उपवास की मुख्यता होने से घडी पल देखने की परंपरा प्रथम विकल्प में आती है । तदनुसार उन्हें संवत्सरी का भादवा सुदी पंचमी का उपवास व्रत प्रचलित एवं पंचांग में लिखी पंचमी को ही करना चाहिए और भ्रांति से चली परंपरा को त्याग देना चाहिए ।आगमाधार रहित प्रतिक्रमण की प्रमुखता वाली परंपरा दूसरे विकल्प में आती है । तदनुसार भी समाज की एकता एवं हानि-लाभ का विचार कर परिवर्तन करना संभव है ।

अतः घडी पल प्रतिक्रमण के लिए देखने में चली आई परंपरा को परिवर्तन करने में कोई भी दोष नहीं समझना चाहिये ।

**जिज्ञेश-** किसी को पंचमी के वर्ष में २४ उपवास का नियम हो तो उसे घडी पल की पंचमी या अस्त तिथि की पंचमी देखना चाहिए क्या ?

**दिनेश-** उसे पंचांग में लिखी पंचमी को ही सभी उपवास करने चाहिए ।

**जिज्ञेश-** घडी-पल से एवं अस्त तिथि से संवत्सरी करने वाला जब

चतुर्थी की संवत्सरी करेगा तो पंचमी का उपवास कब करेगा ?

**दिनेश–** वह साल के २३ उपवास तो पंचांग में लिखी पंचमी को करेगा और भादवा सुदी पंचमी का उपवास वह चतुर्थी की संवत्सरी को करेगा एवं पंचमी का पारणा कर लेगा या तो पंचमी का बेला कर लेगा ।

**जिज्ञेश–** पंचमी को किसी के ब्रह्मचर्य पालन का नियम हो एवं हरी का त्याग हो तो वह क्या करेगा ?

**दिनेश–** घडी-पल से चतुर्थी की संवत्सरी करने वाला ये दोनों नियम चतुर्थी संवत्सरी को भी पालन करेगा एवं दूसरे दिन पंचाग में लिखी पंचमी को भी पालन करेगा ।

**जिज्ञेश–** उसके संवत्सरी की पंचमी अलग और त्याग प्रत्याख्यान आदि की पंचमी अलग यों अलग-अलग करना संगत हैं ?

**दिनेश–** उपर दिए गये प्रमाणों के अनुसार सभी धार्मिक व्रत नियम उपवास आदि करने रूप पर्व दिन की तिथि पंचाग में लिखी तिथि को ही स्वीकार करना उचित होता है एवं वैसा करने पर ऐसी उपरोक्त कोई असंगतता उत्पन्न नहीं होती है ।

**जिज्ञेश–** अपने इस वार्तालाप का सारांश क्या रहा ?

**दिनेश–** संवत्सरी का प्रमुख कर्तव्य साधु का चौवीहार उपवास शास्त्र निशीथ में वर्णित है । अन्य भी कर्तव्य शास्त्र में है। किंतु प्रतिक्रमण की प्रमुखता नहीं है । इसलिए संवत्सरी की पंचमी तिथि उपवास की अपेक्षा ही समझनी चाहिए । अतः प्रतिक्रमण के समय के लिए घडी-पल देखकर कभी चतुर्थी और कभी पंचमी की यों अस्थिर तिथि की संवत्सरी नहीं करके स्थिर तिथि पंचांग में लिखी पंचमी को ही संवत्सरी पर्व की आराधना करनी चाहिए ।

**जिज्ञेश–** ऐसा करने से छट्ठ की घडियों में प्रतिक्रमण होगा न ?

**दिनेश–** इसमें कोई बाधा नहीं है । किसी भी शास्त्र से विरोध नहीं है अपितु उपवास तो सदा पंचमी का ही होगा, जिससे आगम आज्ञा की आराधना होगी ।

उपवास आदि रूप निशीथ सूत्र की आज्ञा एक निश्चित्त तिथि की अपेक्षा है और वह तिथि भादवा सुदी पंचमी सर्वमान्य एवं प्राचीन







है । प्रतिक्रमण के समय पंचमी देखने वाले श्रमण शास्त्राज्ञा वाला पंचमी का उपवास कभी चतुर्थी को करते है जिसका उद्देशक १० सूत्र ३७ में गुढचौमासी प्रायश्चित्त कहा है ।

किंतु छट्ठ की घडियों में प्रतिक्रमण होने पर तो किसी भी शास्त्र पाठ से प्रायश्चित नहीं आता है और नहीं किसी शास्त्राज्ञा का उल्लंघन होता है । प्रसिद्ध चतुर्थी का उपवास करके प्रसिद्ध पंचमी का उपवास नहीं करना, स्पष्ट ही शास्त्राज्ञा का उल्लंघन है ।

**जिज्ञेश –** पर्व दिनों के आराधना कार्य क्या प्रसिद्ध तिथि से नहीं करके अस्त तिथि से एवं घडी पल से ही करने चाहिए ?

**दिनेश –** वह कल्पना आगम सम्मत तो है ही नहीं तथा व्यवहार संमत भी नहीं है । क्योंकि आगम में पर्व तिथियाँ ६ बताई गई है अष्ठमी दो, चतुर्दशी दो, अमावश, पूनम । तथा दो पंचमी दो एकादशी और बीज (द्वितीया) दो, ये भी पर्व तिथियाँ जैन समाज में मान्य है । इन सभी पर्व तिथियों को उपवास पौषध तथा अन्य विविध त्याग नियम श्रमण वर्ग एवं श्रमणोपासक वर्ग में होते हैं । वे सभी लोग इन पर्व तिथियों के व्रताराधन प्रसिद्ध तिथि से ही करते हैं । अस्ततिथि से नहीं करते हैं । यह सत्य हकीगत है ।

अतः अस्ततिथि से पर्वतिथि के व्रताराधना की कल्पना में सत्यता या वास्तविकता नहीं है और घड़ीपल से पर्व-तिथि के व्रताराधना की बात भी पूर्णतः व्यवहार विरूद्ध एवं आगम विरूद्ध है । अर्थात् पंचमी अष्टमी चतुर्दशी आदि जब जिस घडीपल से प्रारंभ होकर जिस घडी-पल में पूर्ण हो उस मध्यकालीन समय में उस तिथि का व्रत, नियम, उपवास, पौषध-व्रत आदि करना मूर्खता पूर्ण ही होगा ।

जैसे पंचमी के घडीपल, दिन के दो बजे प्रारंभ हुए और दूसरे दिन १२ बजे पूर्ण हुए तो उपवास, हरी-त्याग, पौषध, मौन व्रत आदि किस प्रकार किया जाएगा ? ऐसी घडीपल की तिथि का उपवास आदि निंदा के पात्र होंगे ।

अतः अस्ततिथि और घडीपल से पर्व तिथि के व्रताराधन नहीं करके प्रसिद्ध तिथि से ही करने चाहिए ।

**जिज्ञेश–** पंचमी तिथि क्षय या वृद्धि होने पर क्या करना चाहिए ?

**दिनेश–** आगमोक्त अन्य पर्व तिथियों के वृद्धि या क्षय होने पर जो निर्णय लिये जाते हैं अर्थात् उस तिथि का व्रत-नियम एवं उपवास आदि किया जाता है, वैसे ही भादवा सुदी पंचमी के वृद्धि या क्षय होने पर निर्णय कर लेना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** पर्युषण में अट्ठाई कौन से दिन आनी चाहिए ?

**दिनेश–** आगम में केवल संवत्सरी के एक दिन का ही उल्लेख एवं तत्संबंधी विधान है । अत: उसका सही निर्णय करना ही पर्याप्त है। फिर उसके हिसाब से सात दिन पूर्व किसी भी तिथि को अठाई करने में कोई शास्त्र से विरोध नहीं आता है ।

**जिज्ञेश–** पर्युषण में पक्खी आदि कौन से दिन आनी चाहिए ?

**दिनेश–** इसका भी संवत्सरी के दिन से कोई प्रतिबंध नहीं है ।अन्य पक्खी दिवसों के निर्णय अनुसार इस पक्खी का भी निर्णय कर लेना चाहिए । अर्थात् पर्यूषण में पक्खी दूसरे दिन आवे या तीसरे दिन आवे अथवा चौथे दिन । इसमें कोई भी आगम से विरोध नहीं होता है ।

**जिज्ञेश–** उक्त चर्चा के अनुसार पक्खी आदि का निर्णय भी अस्त तिथि घडीपल से नहीं करना चाहिए क्या ?

**दिनेश–** पक्खी आदि पर्व दिन भी श्रमण के लिए उपवास व्रत नियम आदि की प्रमुखता से ही होते है । अत: पक्ष का अंतिम दिन अमावश पूनम जब पंचाग अनुसार हो अर्थात् प्रसिद्ध अमावश पूनम को ही पक्खी पर्व स्वीकार करना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** अमावश या पूनम का क्षय या वृद्धि हो तो तब क्या करना ?

**दिनेश–** जैसा अन्य अष्टमी आदि पर्व तिथियों के क्षय होने से उस तिथी के व्रत नियम आदि किए जाने का व्यवहार होता है उसी तरह पक्खी पर्व के लिए भी समझ लेना चाहिए । ध्यान यही रखना चाहिए कि पक्खी पर्व दिन के बाद दूसरे दिन अगला पक्ष आ जाना चाहिए । क्योंकि पक्खी पर्व का मतलब यह है कि पक्ष के अंतिम दिन की आराधना ।

**जिज्ञेश–** जब भादवा महिना वृद्धि होवे अर्थात् जिस वर्ष दो भादवा महिना होवे तो भादवा सुदी पंचमी की संवत्सरी प्रथम भादवा में करना चाहिए या दूसरे भादवा में ?





**दिनेश–** जब अन्य महिने बढते है तब उन महिनों में आने वाले पर्व जिस तरह किए जाते है उसी तरह भादवा महिना बढ़ने पर संवत्सरी पर्व की आराधना करना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** अन्य महिने बढ़ने पर कौन से पर्व कब किए जाते है यह भी स्पष्ट करें ?

**दिनेश– आषाढ़** महिना दो होने पर आषाढ़ी चौमासी दूसरे आषाढ में की जाती है । श्रावण महिना दो होने पर रक्षाबंधन दूसरे श्रावण में किया जाता है ।**भादवा** महिना दो होने पर गणेश चतुर्थी दूसरे भादवा में की जाती है ।दो भादवा होने पर ऋषि पंचमी दूसरे भादवा में होती है । **कार्तिक** दो होने पर कार्तिक चौमासी पर्व दूसरे कार्तिक में मनाया जाता है । **फाल्गुन** दो होने पर फाल्गुनी चौमासी दूसरे फाल्गुन में की जाती है । **चैत्र** दो होने पर महावीर जयंति, आयंबिल ओली आराधना दूसरे चैत्र में की जाती है । **वैशाख** दो होने पर अक्षय तृतिया दूसरे वैशाख में की जाती है ।

इसलिए भादवा दो होने पर भादवा सुदी पंचमी का संवत्सरी पर्व दूसरे भादवा में ही करना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** दो श्रावण हो तो संवत्सरी कब करनी चाहिए ?

**दिनेश–** संवत्सरी भादवा मास का पर्व दिन है श्रावण महिना दो हो या एक, संवत्सरी के लिए तो भादवा की पंचमी ही निश्चित तिथि है और निश्चित तिथि का परिवर्तन कर पर्व आराधना करने का निशीथ सूत्र में प्रायश्चित्त है । अत: भादवा मास और पंचमी तिथि के परिवर्तन करने को अनागमिक समझना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** आषाढी चौमासी से पचासवें दिन संवत्सरी करना चाहिए ऐसा शास्त्र में है न ?

**दिनेश–** यह तो एक कल्पित कल्पना है । पचास या उनपचास दिन ए ेसी कोई संख्या किसी भी आगम में नहीं है । इसके लिए जिस किसी आगम का नाम लिया जाता है वह तो उस शास्त्र के नाम से केवल कल्पित कल्पना मात्र है ।

**जिज्ञेश–** महिने बढ़ने पर ये पर्व दूसरे महिने में क्यों किये जाते है ?

**दिनेश–** महिना बढ़ने पर पहला महिना नपुंसक मास कहा जाता है। बढ़ने वाले महिने को ऊपर निर्दिष्ट सभी पर्वो में गौण-नगण्य किया जाता है और दूसरे महिने को ही वास्तविक महिना माना जाता है । इस विषय में अन्य भी सूक्ष्म चर्चाए हैं वे अन्यत्र से जाननी चाहिए।

**जिज्ञेश–** धर्म कार्य तो पहले ही करना चाहिए उसे आगे के लिए नहीं करना चाहिए ?

**दिनेश–** कोई भी कार्य का जो निश्चित दिन है उससे पहले-पहले करते जाने से अव्यवस्था होती है । जबकि चौमासी, महावीर जयंति, अक्षय तृतीया आदि किसी के लिए भी ऐसा पहले महिने में करने का संकल्प नहीं किया जाता है । तो केवल संवत्सरी के लिए ऐसा संकल्प क्यों करना चाहिए । जब कि इसके लिए तो, एक निश्चित दिन ही करना, परिवर्तन नहीं करना, ऐसी आगम आज्ञा है एवं परिवर्तन करने का गुढचौमासी प्रायश्चित्त भी निशीथ सूत्र में कहा है । अत: यदि धर्मकार्य पहले करने का विकल्प महत्त्वशील होता हो तो उपरोक्त सभी पर्व भी महीना बढ़ने पर पहले महीने में किए जाने चाहिए किन्तु ऐसा नहीं किया जाता है अत: यह कथन महत्त्वशील नहीं है ।

**जिज्ञेश–** इस पिछली अपनी चर्चा का सार क्या हुआ ?

**दिनेश–** कोई भी महिना या तिथि बढ़े तो संवत्सरी पर्व की निश्चित तिथि भादवा सुदी पंचमी को परिवर्तन नहीं करना चाहिए । प्रतिक्रमण के समय घड़ीपल देखने की उलझन में नहीं पड़ना चाहिए । प्रसिद्ध तिथि से ही पर्व दिन के उपवास पौषध आदि व्रत नियम करने चाहिए जिस तरह अन्य महिनों के धार्मिक पर्व करने का निर्णय लिया जाता है उसी तरह सरलता पूर्वक संवत्सरी पर्व का भी निर्णय कर लेना चाहिए ।

**जिज्ञेश– आगामी वर्ष २०४९** की भादवा सुदी पंचमी कब है ?

**दिनेश–** पंचांग में ३१ अगस्त को गणेश चतुर्थी भादवा सुदी चौथ लिखी है और १ सितम्बर को भादवा सुदी पंचमी ऋषि पंचमी लिखी है ।

**जिज्ञेश–** इस वर्ष घड़ी पल की अस्त की पंचमी कब है ?

**दिनेश–** इस वर्ष भादवा सुदी चतुर्थी के दिन सूर्यास्त के समय चौथ ही होने से पंचांग में गणेश चतुर्थी लिखी है अत: उस दिन ता. ३१ अगस्त को अस्त के घड़ी पल की पंचमी नही हैं ।







एवं भादवा सुदी पंचमी के दिन सूर्यास्त के पूर्व ही पंचमी समाप्त हो जाती है । अत: उस दिन भी घड़ी पल की अस्त तिथि की पंचमी नहीं है । फिर भी पंचाग में सूक्ष्म गणित के अनुसार ऋषि पंचमी भादवा सुदी पंचमी को ही लिखी है ।

**जिज्ञेश–** ऐसी स्थिति में इस वर्ष संवत्सरी अस्त तिथि की मान्यता वाले और प्रसिद्ध तिथि की मान्यता वाले एक ही दिन पंचमी को करेंगे ? क्योंकि चौथ के पूरे दिन तो पंचमी है ही नहीं ।

**दिनेश–** अपनी-अपनी परम्परा में आग्रह को लेकर कई चौथ को ही पाँचम मानेंगे और चौथ को संवत्सरी करेंगे और कोई ऋषि पंचमी एवं प्रसिद्ध पंचमी की संवत्सरी करेंगे । यों इस प्रकार इस वर्ष भी संवत्सरी पर्व में विभेद रहेंगे ।

**जिज्ञेश–** तो हमें किस दिन करनी चाहिए ?

**दिनेश–** जिस क्षेत्र में एवं समाज में हम रह रहे हों उस समाज की एकता शान्ति समाधि जिस तरह रहे, प्रेम वात्सल्यता जिस तरह बढे, उसी दिन हमें संवत्सरी पर्व की आराधना करनी चाहिए एवं संपूर्ण जैन समाज को प्रसिद्ध पंचमी की संवत्सरी करने की प्रबल प्रेरणा मिले ऐसा प्रयत्न जारी रखना चाहिये । जिससे संपूर्ण जैन समाज की स्थाई एकता एवं जिनाज्ञा की सच्ची आराधना हो सके ।

**तिथि निर्णय(राजेन्द्र कोष से) पारासर स्मृति आदि में :-**

**आदित्योदय वेलायां, या स्तोका पि तिथि र्भवेत् ।**
**सा संपूर्णा इति मन्तव्या, प्रभूता नोदयं विना ॥**

**अर्थ–** सूर्योदय के समय अल्प समय मात्र भी जो तिथि हो उसे ही संपूर्ण तिथि ढप में मान्य करनी चाहिए । सूर्योदय के समय न हो और बाद में अनेक घंटे भी हो तो भी वह तिथि मान्य नहीं की जा सकती ।

**उमास्वाति वाचक प्रघोषश्चैवं उच्यते -**

**क्षये पूर्वा तिथि कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।**
**एवं पौषधादिना पर्व दिवसा, आराध्या इति पर्व कृत्यानि ॥**

**अर्थ -** कोई भी तिथि क्षय होती है तो उस तिथि के धर्म कार्य पूर्व की

तिथि के दिन करने चाहिये । किसी भी तिथि के वृद्धि होने पर दूसरे दिन उस तिथि के कार्य करने चाहिए । इस प्रकार मान्य करके ही पौषध आदि के द्वारा पर्व दिनों की आराधना करनी चाहिए–***उमास्वातिवाचक वचन प्रमाण्याद् वृद्धौ सत्यां स्वल्पापि अग्रेतना तिथिः प्रमाण्यम् ।***

**अर्थ–** उमास्वाति आचार्य के वचन को प्रमाण करके तिथि के वृद्धि होने पर दूसरे दिन अल्प समय ही वह तिथि हो तो भी अगले दिन ही पर्व तिथि माननी चाहिए ।–***अभिधान राजेन्द्र कोश भाग–४, 'तिहि' शब्द ।***

## सुलझे विचार

**– श्र.सं. महामंत्री श्री सौभाग्यमलजी म.सा.**

यद्यपि हमारी परंपरा अस्त तिथि की रही है किन्तु इससे बहुत अव्यवस्था हो गई है । कभी चौथ, कभी पंचमी, कभी चतुर्दशी, कभी पूर्णिमा, यों प्रत्येक पर्व में दुविधा फैल गई है । अब समाज विस्तृत हो चुका हे, प्रोग्रेसिव भी सभी स्थायित्व चाहते है। सभी जगह तिथियों के बदलाव के निर्णय शीघ्र पहुँच भी नहीं पाते है । अतः सारे स्थानकवासी समाज को एक मत से उदय तिथि स्वीकार कर लेना चाहिए ।

श्वे. मूर्तिपूजक जैन उदय तिथि के आधार पर चतुर्थी की संवत्सरी निश्चित ढप से कर लेते हैं, श्वे. स्था. तेरापंथी जैन भी उदय के आधार पर पंचमी कर लेते हैं सभी जैन समाज स्थायी तिथि की मान्यता रखते हैं केवल स्थानकवासियों में ही यह दुविधा है– कभी चौथ, कभी पंचमी । यह स्थिति समाप्त होनी चाहिए । मनन करें ।

# आगम संम्मत एकलविहार और संवत्सरी

## [एक कटु सत्य अनुप्रेक्षण]

(१) साधु को एकलविहार की एकांत मनाई ३२ सूत्र में नहीं है ।

(२) साधु का दूसरा मनोरथ ही एकलविहार है ।

(३) एकलविहारी साधु आचार्य की शिष्य संपदा में होता है ।

(४) साध्वी को एकलविहार की मनाई व्यवहार सूत्र में स्पष्ट है। फिर भी २०६ एकल विहारी साध्वियों का वर्णन ज्ञातासूत्र मे किया है उन सभी को दो भव से मोक्ष होना बताया है।

(५) आचार्य उपाध्याय को भी एकलविहार की मनाई है ।

(६) आचार्य के कर्तव्य में शिष्य को एकलविहार चर्या का शिक्षण देना भी कहा है ।**-दशाश्रुत स्कंध सूत्र ।**

(७) पंचांग में लिखी **भादवा सुदी पांचम** के निश्चित दिन की संवत्सरी नहीं करने वाले साधु-साध्वी सभी को निशीथ सूत्र उद्देशक-१० से गुढचौमासी प्रायश्चित्त आता है । यह आगम सिद्ध तत्व है । इसे हजम करके कोई कुछ भी करे, कहे तो यह पाँचवाँ आरा है, चलाते रहे अपनी अपनी मरजी से । कुछ भी तर्क देना वास्तव में आँख आडे कान करने के समान जबरन अंधे बनना है । (इस पुस्तक में सवंत्सरी विचारणा शुद्ध मन से पढ लेवें)

(८) सूयगडांग सूत्र में आधाकर्मी आहार या पानी जिस गच्छ में जहाँ भी भोगा जाता है उस गच्छ का त्याग कर एकलविहार करने की स्पष्ट प्रेरणा अध्ययन-१० गाथा ११-१२ में की गई है । और उससे मुक्ति होने का स्पष्ट आश्वासन दिया गया है।**( उलटा सीधा अर्थ करके सही अर्थ को छिपाना पाप कार्य होता है)**

(९) अत: जो गच्छगत घमंडी श्रावक-साधु एकल विहार का निषेध निन्दा अवहेलना कर एकल विहारी साधु को असाधु और संसार प्ररिभ्रमणका सर्टिफिकेट बाँटते फिरते हैं स्पष्ट ही उत्सूत्र प्ररूपक है। उन्हें जैनी एवं आगम श्रद्धावान कहलाने मे शर्म आनी चाहिये। जब कि आचार्य उपाध्याय दो पद के बिना कोई अच्छा बडा गच्छ नहीं





रह सकता है। एवं साधु भी आचार्य उपाध्याय दो पद के बिना नहीं रह सकते है यह स्पष्ट शास्त्रसिद्ध बात है। फिरभी कितने ही गच्छ बडी शान के साथ दोनो पदवीधरों के बिना फिरते है वे वास्तव में भगवदाज्ञा के पक्के चोर एवं बेशर्मी युक्त शान से समाज मे जीते है। उन्हें कोई सच्ची आगम की आँखों से देखना समझना भी नही चाहते। और समय समय पर एकल विहार को आगम विढद्ध कहकर उत्सूत्र प्ररूपणा का पाप करते नहीं लज्जाते हैं। जब कि हरिकेशी और गर्गाचार्य को एकल विहार से ही मुक्ति होना उत्तराध्ययन सूत्र बताता है। उन्हें कोई पूर्वों का ज्ञान था नही।५०० चेलो को नही निभा सकने वाला भी एकल विहार से मोक्ष ले सकता है १४००० साधु समाज के होते हुए भी।

(१०) आज के उत्कृष्टाचारी श्रमण एकल विहारी के प्रति बोल पडते कि "जो भी संत अकेले विचरते हो उन्हे गृहस्थ बनाकर घर भेज देना चाहिए "। दूसरो की पंचायत करने वाले साधकों की यह भाषा समिति भावभंगी कैसी है? जब की आगमकार अतिवृद्ध अकेले और छत्र, जूते, डंडा, लाठी, भृषिका आदि अनेक उपकरण रखने वाले के प्रति भी अनुकंपा एवं सहानुभूति के वाक्य का पाठ व्यवहार सूत्र उद्देशक-८ सूत्र-५ में रखते है। धर्मी साधक सोचे! कहाँ आगम पाठ और कहाँ आचार का ठेका रखने वालों की भाषा भावभंगी। एक साधु के गृहस्थ बन जाने की समस्त जीवन भर की पाप क्रियाओं के अनुमोदक प्रेरक बनते भी उन्हें शर्म नहीं आती है। अपने द्रव्याचार के घमंड मे घमंडी बनी आत्माएँ कभी ऐसे आगम पाठो से चिंतन कर स्वदोष दर्शन कर नहीं सकती। उन्हें क्रिया के अजीर्ण रूप अभिमान में परदोष ही दिखते हैं। स्वदोष दर्शन भी नहीं, सुधार की भावना भी सरलता नम्रता के अभाव से नहीं हो पाती। दु:ख होता है कि जिन शासन के सच्चे साधक कहे जाने वालों में और भावभाषा की विवेक हीनता का कैसा विरोधी संयोग ! पांचवें आरे का काल प्रभाव ही एसा है यह मान कर संतोष रखना ही पडेगा। आज के शुद्धाचारी कहाने वालों में अपने

अहं के कारण भावभाषा का अविवेक इतना हावी हो गया है कि साधु श्रावक दोनों के विवेक और जागृति के नेत्र बंध हो रहे है। जिससे आये दिन समाज मे भाव गंदगी का कचरा फैला कर स्व पर उभय के लिये वातावरण दूषित कर सभी पक्ष प्रतिपक्ष वालों को राग द्वेष में डुबाने के प्रेरक एवं निमितक बनते हैं। उपर से धर्मी दिखने वाले अंतर में विद्वेषी विसमभावी अविवेकी होने से सम्यक्त्व हीन बनते है क्योंकि समसंवेग ये समकित के मुख्य प्रधान लक्षण है।

संवत्सरी करने का मतलब = चौविहारा उपवास करना। गोरोम जितने बाल हो तो लोच कर लेना। सामाचारिक नियमो का प्रेक्षण अनुप्रेक्षण करना। कषाय क्लेश अनमना अबोला को समाप्त कर देना आगे नहीं चलाना। वर्षभर के लगे प्रायश्चित्तो को तपस्या आदि से उतार देना। ये सवंत्सरी संबंधी विशिष्ट कर्तव्य है।दशा॰ तथा निशीथ सूत्र।

**प्रतिक्रमण**– यह तो साधु साध्वी का दैनिक उभयकाल का कर्तव्य है ही, संवंत्सरी के विशिष्ट कार्य उपर दिये है।

**प्रश्न :** क्या संवत्सरी प्रतिक्रमण करना यह विशिष्ट कर्तव्यो मे नहीं है ? **उत्तर**– निशीथ सूत्र मे जितने प्रायश्चित्त संवत्सरी संबंधी कहे हैं उनमें प्रतिक्रमण संबंधी कथन नहीं है। यह तो सदा का उभय काल का ही आवश्यक कर्तव्य है।

**प्रश्न :** क्या संवत्सरी प्रतिक्रमण आगे पीछे करने से गुढचौमासी प्रायश्चित्त नहीं आता है ? **उत्तर**– नहीं, ऐसा कुछ भी नही है। प्रायश्चित्त की गलत प्ररूपणा करने वाले को खुद को ही वही प्रायश्चित्त आता है।

ज्ञातासूत्र मे २०६ एकल विहारी साध्वीओ के मोक्ष जाने के कथन की उदारता बताई गई है। जब कि वे अकल्पनीय आचार वाली थी।यह जिन शासन की विशालता है।फिर भी संकीर्ण मानस वाले अनंत संसार परिभ्रमण की बातें करते है कि गढआज्ञा मे नहीं रहने से मोक्ष कभी नही हो सकता।

**सार**– नव दीक्षित = तीन वर्ष की दीक्षा वाला। डहर-बालक = १६





वर्ष तक की उम्र वाला तथा तढण = ४० वर्ष तक की उम्र वाला। इन तीनो ं प्रकार के साधुओं को आचार्य उपाध्याय से रहित गच्छ में रहना भी नहीं कल्पता है और इन तीनों को एकलविहार कर स्वतंत्र आचार्य उपध्याय के बिना रहना भी नहीं कल्पता है। तात्पर्य यह है कि आचार्य उपाध्याय के बिना गच्छ वालों को भी रहना नहीं कल्पता है और उपर कहे तीन को अकेले रहना भी नहीं कल्पता है इसलिये एक पक्ष की बातें करना व्यर्थ का बकवास होता है।

जो भी साधु साध्वी अथवा श्रावक श्राविका किसी भी प्राणी से अथवा किसी भी जैन साधु, साध्वी या संध से वैर-विरोध, अनमना, अबोला, निन्दा, घृणा का भाव या तिरस्कार का भाव वर्षों तक भी नहीं मिटाते हैं या बढाते रहते हैं, दूरियाँ बढाते रहते हैं वे सभी अंदर में तो पक्के मिथ्यादृष्टि होते हैं उनके वास्तव में कभी संवत्सरी नहीं होती है। वे उपर के दिखाऊ साधु श्रावक ही होते हैं उनमें गुणस्थान एक पहला ही रहता है। अतः जैन कहलाने वाले अधिक लोगो को जैनत्व रखना भी नहीं आता है भले कितनी ही बडी बातें बनाते रहें।

भगवदाज्ञाओं को स्वीकारने वाला तथा सरल स्वभावी नम्र, कषायोपशांत प्रकृति वाला ही **वास्तविक** जैनी एवं **स्थाई जैन** कहा जा सकता है। कट्टरपंथी और दुराग्रही तथा जिद्दी-महाजिद्दी प्रकृति के साधक अपनी आत्मा के वंचक और जैन समाज के भंजक होते हैं। ऐसों की दुर्गति ढकना दु:शक्य होता है अर्थात् ऐसे धर्मी भी दुर्गति के पथिक होते हैं।

गच्छ में रहने वालों को आगम आज्ञा गुढआज्ञा और गच्छसमाचारी का पालन करना नीतांत आवश्यक होता है। बहुश्रुत बने बिना एकला विचरना या सिंघाडे का मुखिया बनना नहीं कल्पता है। एकलविहारी को समस्त आगम आज्ञाओं का ईमानदारी से पालन करना नीतांत आवश्यक होता है, सदा अभिग्रह करके गोचरी जाना होता है तथा सोते- उठते आत्म चिंतन स्वदोष दर्शन करना भी आवश्यक होता है।

कोई कितनी ही खोटी प्ररूपणा कर एकलविहार का निषेध करते रहे तो भी प्राय: सभी गच्छों में एकलविहारी होते आये हैं। अच्छे योग्य बनाकर एकलविहारी साधक आचार्य की नैश्राय में नहीं बनाये जायेंगे तो खोटे-अयोग्य एकलविहारी तो होने ही वाले हैं। जिन शासन में सदा एकलविहारी अच्छे खराब दोनों होते रहे हैं-**आचारांग अध्ययन- ५ और ६** में दोनों प्रकार के वर्णन है। विशेष में बडी बात तो यह है कि एकांत निषेध होते हुए भी अकेली साध्वियाँ भी सदा होती आई है और स्पष्ट रूप से आज्ञा विढद्ध होते हुए भी अल्प भवों में शीघ्र मोक्ष जाने वाली होती आई है।-**ज्ञातासूत्र अध्ययन-१६ तथा दूसरा श्रुत स्कंध।** इसलिये एकांत खोटी प्ररूपणा(अनंत संसार भ्रमण करते ऐसा कथन) करने वाले होशियार धमंडी पंडित कहे जाने वाले लोग तो असत्य का दोष लगाकर पाप ही बांधते हैं।

आज समाज(एक गच्छ) में १० एकलविहारी संप्रदाय स्वीकृत भी विचरते हैं। श्रमण संध में भी १०-२०-२५ साधु साध्वी एकलविहारी संध में स्वीकृत रहते हुए विचरते हैं १२०० साधु साध्वी का समुदाय होते हुए भी। बाकी घमंडी गच्छ वाले अनुकंपा पात्र एकलविहारी को आज्ञा बाहर घोषित कर निर्दयता का व्यवहार करके पाप बांधते नहीं लजाते हैं।





## सार वाक्य

**(१)** अपरिपक्व साधु को गुढ सांनिध्य में रहना आवश्यक होता है।- **सूय॰१४**। अर्थात् परिपक्व साधु = श्रुतज्ञान आदि गुण संपन्न साधु यथावसर अनेक साधनाएँ कर सकता है।

(२) अव्यक्त साधु को गुढ सांनिध्य नहीं छोडना।- **आचा॰प्रथम।** अर्थात् कषाय विजयी एवं परिषह विजयी साधु एकलविहार आदि साधनाएँ कर सकता है।

(३) स्वतंत्र बडा बन कर विचरण करने वाला साधु श्रुतसंपन्न और अनेक गुण (विचक्षणता बुद्धिमत्ता निडरता आदि) वाला होना जरूरी है। सामान्य योग्यता वाला साधु मुखिया बनकर गोचरी, विचरण, व्याख्याता एवं गुढ नहीं बन सकता।

(४) दो पदवीधर(आचार्य उपाध्याय) के बिना विशाल गच्छ को चलाना जिन शासन का अपराध है तथा ऐसे गच्छ में नव दीक्षित, डहर एवं तढण(४० वर्ष से कम)श्रमणों को रहना नहीं कल्पता है।- **व्यवहार सूत्र।**

(५) परिपूर्ण धैर्य(सहनशील) तथा अदम्य(अपार) उत्साह,ये दो गुण विशेष होने पर स्वतंत्र विचरण की योग्यता(छ गुण) वाला साधु एकल विहार कर सकता है और भिक्षु की १२ पडिमा धारण कर सकता है। पूर्वों के ज्ञान का कायदा आगम का नहीं है देखें **अंतगड सूत्र** में- ११ अंग सूत्रों के ज्ञाता अनेक श्रमणों ने भिक्षु पडिमा धारण करी थी।

(६) एकल विहार का एकांत निषेध करना और निंदा करना उत्सूत्र प्ररूपणा करना और पाप करना है।

(७) आचार्य उपाध्याय के बिना गच्छ चलाना भगवदाज्ञा की चोरी है।

(८) छोटे गच्छ मे भी एक प्रवर्तक पद होना जरूरी होता है।

(९) प्रकृति की शांति, गहन गंभीरता तथा आचार निष्ठता एवं श्रुत-संपन्न,शक्ति संपन्न साधु एकल विहार कर कर्म निर्जरा करे तो वह आचार्य की साधु संपदा में होता है।

(१०) योग्यता संपन्न साधु को एकल विहार का निषेध करने से ही अयोग्य एकल विहारी स्वत: बन जाते हैं।